लोकमान्य तिलक के

स्वराज्य पर तीन व्याख्यान।

(बेलगांव में ता० १—५—१६ को दिया हुआ व्याख्यान)

स्वराज्य का क्या मतलब है? इस विषय में बहुतों की कल्पना भ्रमात्मक है। कुछ लोग इसे समझते ही नहीं और कुछ लोग तो समझते हुए भी इसका उल्टा अर्थ करते हैं। कई लोगों को तो इसकी आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होती। इस प्रकार इसके अनेक भेद हैं। अतः स्वराज्य किसे कहते हैं, हम उसे क्यों चाहते हैं, हम उसके योग्य हैं या नहीं, और जिनसे हमें स्वराज्य माँगना है, उनसे किस ढंग से उसे माँगना चाहिये; हमारे उद्योग की कौनसी दिशा तथा उसमें हमारी कैसी नीति होनी चाहिये—आज केवल इन्हीं बातों के सम्बन्ध में मैं आप से दो-चार सामान्य बातें कहूँगा। इसके अतिरिक्त किसी प्रकार का विशिष्ट विवेचन करने को मैं इस समय तैयार नहीं हूँ।

यह बात नहीं है कि जो चार बातें मैं कहने वाला हूँ, वे मेरे ही उद्योग और मेरे ही प्रयत्न के फल हैं। स्वराज्य की कल्पना बहुत पुरानी है। यह स्पष्ट है कि यह कल्पना उसी समय उत्पन्न होती है, जब हम किसी ऐसे राज्य या शासन में हों, जिसे हम 'स्व' अर्थात् अपना न कह सकते हों। जब

ऐसी स्थिति प्राप्त होती है, तभी स्वराज्य की आवश्यकता प्रतीत होती है और तभी उसके लिये उद्योग भी आरम्भ किया जाता है। इस समय आप भी इसी स्थिति में हैं। आप पर शासन करनेवाले न आप के धर्म के, न आप की जाति के, यहाँ तक कि आप के देश के भी नहीं हैं। यह प्रश्न ही निराला है कि अँगरेज सरकार का शासन अच्छा है या बुरा। स्वकीय और परकीय का प्रश्न भी भिन्न है। आरम्भ ही में दोनों को एक में मिला देना ठीक नहीं है। स्वकीय और परकीय का प्रश्न उपस्थित होने पर इसे अवश्य ही परकीय कहना पड़ेगा। भले-बुरे का प्रश्न उपस्थित होने पर भला कहिये या बुरा। यदि बुरा कहिये तो उसमें कौन सुधार किये जाने चाहिये, यह प्रश्न निराला होगा। भला कहने पर यह देखना होगा कि उसमें कौन सी ऐसी अच्छी बातें हैं, जो उससे पहिले के शासन में न थीं। ये भिन्न भिन्न दशायें हैं।

वर्त्तमान राज्य-व्यवस्थाके अनुसार भारत के राज्यकार्य का सञ्चालन थोड़े से लोगों के हाथ से होता है, जिनकी शिक्षा इंगलैंड में होती है और जिन्हों ने वहां के कालेजों में उत्तम प्रकार की शिक्षा पाई है। राजा का पद केवल नाम के लिये है। राजा के विषय में आप के हृदय में जो जो भावनायें उत्पन्न होती हैं, उन्हीं को व्यक्त स्वरूप देने से वर्त्तमान समय के सम्राट् की भावना हो जाती है। यह भावना अव्यक्त है। इस अव्यक्त भावना को व्यक्त स्वरूप देने से राजा या सम्राट् की कल्पना होती है, पर वह स्वयं कारोबार की देखभाल नहीं करता। स्वराज्य का प्रश्न सम्राट् के सम्बन्ध में नहीं है और न इस अव्यक्त भावनाही के सम्बन्ध में; इस बात का पहिलेही से स्मरण रखना चाहिये। कोई भी देश हो, उसमें राजा होना चाहिये;

सब प्रकार की व्यवस्था तथा देख-भाल करनेवाला भी कोई मनुष्य होना चाहिये तथा उसमें किसी एक प्रकार की शासन-प्रणाली भी प्रचलित रहनी चाहिये।

सदा से राजसत्ता के दो भाग होते आये हैं। एक परामर्श-दायी मण्डल और एक कार्यकारी मण्डल। स्वराज्य के सम्बन्ध में जो प्रश्न भारत में इस समय उपस्थित हैं, वे ऊपर की अव्यक्त कल्पना के विषय में नहीं हैं। जिन्हें हम पर राज्य करना है, जिनके नेतृत्व में, जिनकी आज्ञा से, जिनके पथ-प्रदर्शन से राज्य का सञ्चालन होता है, उनके विषय में भी यह प्रश्न नहीं है। यह बात निर्विवाद है कि हमें अपना कल्याण अंग्रेज़ों की अधीनता में, ब्रिटिश जाति के निरीक्षण में, इनकी सहायता, सहानुभूति और चिन्ता से तथा इनके उच्च भावनाओं का लाभ उठा कर ही करना होगा। मुझे इस विषय में कुछ और कहना नहीं है। (तालियाँ)

आप अपना अभ्युदय अंग्रेज़ी गवर्नमेन्ट की सहायता अग्रेज़ो 'गवर्नमेन्ट' की जगह अव्यक्त अंग्रेज़ी गवर्नमेन्ट शब्द का व्यवहार करना अनुचित न होगा—अव्यक्त अंग्रेज़ी गवर्नमेन्ट के अनुग्रह तथा सहायता से तो चाहते हैं। तब दूसरा प्रश्न यह उठता है कि आखिर आप मांगते क्या हैं? इसका उत्तर भी उसी भेद में है, जो मैं आप को बतला चुका हूँ। सरकार चाहे अव्यक्त ही हो तथापि जब वह व्यक्त होने लगती है, तो उसके अंगों तथा उसके कार्यों से राज्य की व्यवस्था होती है। यह व्यक्त भाव अव्यक्त सरकार के भाव से भिन्न है। इसकी भिन्नता वैसी ही है, जैसी परब्रह्म और माया की। अव्यक्त शब्द मैं ने वेदान्त से लिया है। निर्गुण तथा निराकार परब्रह्म भिन्न है और माया के आवरण में

आ जाने से उसकी जो व्यक्तावस्था होती है, वह भिन्न है। तथापि माया के व्यवहार परिवर्त्तनशील हैं। क्षण क्षण में बदलते रहना ही माया का लक्षण है। अव्यक्त सरकार स्थिर है पर व्यक्त सरकार क्षण क्षण में परिवर्त्तित होनेवाली है।

इस समय जिस 'स्वराज्य' शब्द का व्यवहार किया जा रहा है, वह व्यक्त सरकार से सम्बन्ध रखता है। अव्यक्त सरकार के स्थायी रहते हुए क्षण क्षण में बदलनेवाली व्यक्त सरकार में किस प्रकार के परिवर्त्तन होने से हमारे राष्ट्र का कल्याण होगा, यही स्वराज्य का प्रश्न है। और इस स्वराज्य के प्रश्न के साथ साथ यह प्रश्न भी उपस्थित होता है कि भारतवर्ष में जो शासन प्रचलित है, वह किस के हाथों में होना चाहिये। अव्यक्त सरकार (अंग्रेज सरकार को) बदलने की हमारी इच्छा नहीं है। उसका जो व्यक्त स्वरूप है, जिसके हाथों से अव्यक्त सरकार के कार्य किये जा रहे हैं, उसी के हाथों में शासन प्रबन्ध न रहे, वह किसी और को सौंपा जाय, यही हमारा कथन है। इस समय जो स्वराज्य का आन्दोलन किया जा रहा है, वह इसी समझ से कि आज-कल यह प्रबन्ध जिनके हाथों में है, उनसे लेकर किसी और के हाथों में जाने के पश्चात् उसकी सहायता वा किसी और व्यक्त मूर्त्ति द्वारा किये जाने से लोगों के लिये हितकर हो।

भारत का शासन कौन करता है? क्या सम्राट् (स्वयं) आकर करते हैं? बड़े बड़े अवसरों पर देवताओं की भांति उनका जुलूस निकालना, जिस में हम उसके प्रति अपनी राजभक्ति प्रदर्शित कर सकें, क्या यह उनका काम है? फिर शासन प्रबन्ध कौन करता है? इसे वही लोग करते हैं, जो इस समय नौकर हैं। अर्थात् स्टेट सेक्रेटरी, वाइसराय तथा

गवर्नर, इनके मातहत कलेक्टर और तहसीलदार और सब के पीछे पुलीस के सिपाही। अमुक पुलीस का सिपाही बदल कर उसकी जगह दूसरा सिपाही भेजिये, क्या यह कहना राजद्रोह है? अमुक कलेक्टर हमें पसन्द नहीं है, हमें दूसरा कलेक्टर चाहिये, क्या यह कहना भी राजद्रोह है? एक स्टेट-सेक्रेटरी को हटाकर दूसरे को उसका पद दीजिये, यह कहना क्या राजद्रोह है? कोई भी इसे राजद्रोह नहीं कह सकता। पुलीस के सिपाही के लिये जो नियम है, वही स्टेट-सेक्रेटरी के लिये भी है। स्टेट-सेक्रेटरी जिस राजा का मंत्री है, जिस राजा का नौकर है, हम लोग उसी राजा की प्रजा हैं।

यदि आप वर्त्तमान राज्यव्यवस्था को सर्वथा उचित समझते हों, तो मुझे आप से कुछ नहीं कहना है! आप कांग्रेस और कानफरेंसों में जाकर कहते हैं—हमारी जमींदारी आदि के अधिकार छीन लिये गये; जंगल विभाग के सम्बन्ध में हम पर अत्याचार किया गया; आबकारी विभाग की बदौलत शराब का अधिक प्रचार हुआ; जैसी शिक्षा हमें मिलनी चाहिये, वैसी नहीं मिली; इन सब बातों की जड़ क्या है? इसके कह देने से ही क्या लाभ है? आप उचित शिक्षा क्यों नहीं पाते? आबकारी की दूकानें जहां आप नहीं चाहते, वहाँ क्यों खोली जाती हैं? जंगल विभाग में रक्षित जंगल तथा भिन्न प्रकार के जंगलों के सम्बन्ध में नियम क्यों बनाये जाते हैं। ऐसा क्यों होता है? ये सब प्रश्न ऐसे हैं कि जिनका एक ही उत्तर है। यदि आज कल के अधिकारियों की जगह आप अधिकारी होते अथवा वे अधिकारी लोकमत के सामने उत्तरदायी होते, तो ये बातें न होतीं। इसके सिवाय इसका दूसरा उत्तर नहीं हो सकता। यह सब इसी लिये होता है कि

आप सत्ता रहित हैं । यह सम्पूर्ण व्यवस्था यद्यपि आप ही के कल्याण के लिये की जाती है, तथापि आप को उसके निर्णय का अधिकार नहीं दिया गया है !

अतः हमारा माँगना एक ऐसे छोटे बालक के समान है, जो भूख लगने पर रोता है; किन्तु यह नहीं कह सकता कि उसे भूख लगी है । मां यह समझती है कि वह भूखा है या उसका पेट दर्द करता है । अनेक बार रोग कुछ होता है और उपचार कुछ और ही होता है । इस समय आप की भी वैसीही स्थिति है । आप पहिले से यह बिलकुल नहीं समझते कि आप को किस बात की जरूरत है या आप को किसमें अड़-चन पड़ेगी ? जब इन बातों को आप इतना समझने लगे, तब आप स्वयं ही इन्हें बतलाने लगे । लेकिन इस समय आप की स्थिति ऐसी है कि जो कुछ आप कहें, उसके अनुसार काम करा लेने की शक्ति आप में नहीं है । इसलिये होता क्या है ? जो कुछ करना हो, जिस बात की आवश्यकता हो—मान लीजिए कि घर में कुआँ खुदवाना हो, तो उसके लिये भी कले-क्टर साहब से प्रार्थना करनी पड़ती है । जंगल में शेर मारना हो, तो कलेक्टर साहब से प्रार्थना कीजिये । घास नहीं मिलती, जङ्गल की लकड़ी नहीं मिलती, घास काटने की आज्ञा नहीं मिलती, दीजिये कलेक्टर साहब के यहाँ अर्जी । अर्थात् बिलकुल बेकारों और असहायों की सी स्थिति हो रही है । यह व्यवस्था हमें नहीं चाहिए, इस से अच्छी व्यवस्था चाहिए और वह अच्छी व्यवस्था स्वराज्य है—वही होमरूल है ।

पहिले पहल यह प्रश्न नहीं उठता । जिस प्रकार लड़का जब छोटा रहता है, तब उसे कुछ मालूम नहीं होता, बड़े होने

पर उसे सब बातें मालूम होने लगती हैं। वह यह समझने लगता है कि मेरे घर की व्यवस्था मेरी सम्मति के अनुसार हो तो अच्छा हो। यही बात राष्ट्र की भी है। अवस्था ऐसी है कि राजकार्य करने वाले लोग विलायत से ही कुछ विशेष नियमों के अनुसार नियुक्त किये जाते हैं और उनकी नीति आप के सम्बन्ध में पहिले ही से निश्चित बनी हुई रहती है। अब ये नियम चाहे अच्छे हों या बुरे। ये नियम अच्छे हो सकते हैं, खूब सुयन्त्रित हो सकते हैं, व्यवस्थित हो सकते हैं, मैं यह नहीं कहता कि खराब ही होते हैं। लेकिन दूसरों की व्यवस्था चाहे जितनी अच्छी क्यों न हो, तो भी यह बात नहीं हो सकती कि जिन लोगों को इस व्यवस्था के करने का अधिकार चाहिए, उन लोगों को (दूसरों के द्वारा की हुई) ऐसी व्यवस्था सदा पसन्द ही आवे। स्वराज्य का यही तत्व है।

मैं यह नहीं कहता कि अधिकार मिल जांय, तो हमारा चुना हुआ कलेक्टर वर्त्तमान कलेक्टर की अपेक्षा अधिक कार्य करे। सम्भव है, न भी करे या शायद बुरा भी करे। इसे मैं मानता हूँ। लेकिन इन दोनों में भेद यही है कि हमारा नियुक्त किया हुआ कलेक्टर हमारा ही होगा और वह सदा इस बात का ध्यान रखेगा कि हम किस तरह सन्तुष्ट रह सकते हैं। लेकिन जो पराया होता है, वह यह समझता है कि जो बात हमारी समझ में अच्छी जान पड़ती है, वह दूसरों की समझ में भी अच्छी ही जान पड़ेगी। लोगों की बातें सुनने की क्या जरूरत है? मैं इतना पढ़ा-लिखा हूँ, मुझे इतनी तनख्वाह मिलती है, मुझ में इतनी लियाकत है, मैं जो कुछ करूँगा, वह लोगों के लिये अहितकर कैसे होगा।

इसका उत्तर यह है कि तुम में इतना घमण्ड है, इसी लिये तुम से अहितकर काम होगा। (हँसी) जिसके देह में चिकोटी काटी जाती है, उसे उसका जैसे कोई अनुभव नहीं है, उसी तरह इसका कारण भी है।

इस समय जो जो झगड़े उपस्थित हैं, उन पर यदि सूक्ष्म रीति से विचार किया जाय, तो जान पड़ेगा कि इस समय जो शासनपद्धति प्रचलित है, वह हमें नहीं चाहिये। यह बात नहीं है कि हमें राजा की आवश्यकता नहीं है। यह भी नहीं कि हमें अँग्रेज सरकार अथवा बादशाह की जरूरत नहीं है। जिस रीति से यह शासनपद्धति प्रचलित है, उसमें हमें एक खास तरह का बदलाव चाहिए। और यदि वह परिवर्त्तन हो जाय, तो अँग्रेजी सरकार के लिये उसमें कहीं से धोखा भी नहीं दिखाई देता। लेकिन ऐसे लोगों को जिनका दृष्टिक्षेप हम से निराला है, उन्हें इस में कुछ धोखा दिखाई देता है; क्योंकि वे ही लोग ऐसा कहते हैं। (तालियाँ) अब बहुत से लोगों का ध्यान इस बात की ओर आकर्षित हुआ है कि इस समय जो शासन-पद्धति प्रचलित है, उस पद्धति में किस प्रकार का अन्तर होना चाहिए। हम जो सामान्य बातें चाहते हैं कि अमुक गाँव में से शराब की दूकान उठा दीजिए, तो वे (अधिकारी) कहते हैं कि यह दूकान नहीं उठ सकती। चलिए, हो गया। अगर हम कहें कि नमक का कर कम कीजिए, तो वे कहते हैं कि नमक के कर से जो आय होती है, उसी पर हमारा ध्यान रहता है। अगर हम उसे कम कर देंगे, तो हमारा उधर का... काम कैसे चलेगा? पर जो व्यवस्था करता है, उसी को ये सब बातें करनी पड़ती हैं। जब हम अपने घर की व्यवस्था

करने का अधिकार माँगते हैं, तब हम यह नहीं कहते कि आप को जो कुछ मिलता है, वह सब हमें दे दीजिये और उसमें से आप कुछ खर्च मत कीजिए। अपना खर्च हम करें और हम ही धन बटोरें। ये जो दो बातें हैं, इनका संयुक्त उत्तरदायित्व हमारे ही ऊपर चाहिये। इस समय यही झगड़ा है। ब्युरॉक्रेसी के जो पराये अधिकारीवर्ग के लोग आते हैं, वे कहते हैं कि हमारी मर्जी के मुताबिक काम करो; किन्तु हम कहते हैं कि हमारी मर्जी के मुताबिक करो, तभी ये सब दुःख दूर होंगे।

पहिले कहा जा चुका है कि अगर लड़का अनजान हो, तो बाप मरते समय पंच मुकर्रर कर जाता है; वे पंच उसकी सारी जायदाद की देख-भाल करते हैं। उससे कुछ फायदा भी होता है। यह बात नहीं है कि कुछ भी फायदा न हो। जब लड़का कुछ बड़ा होता है, तब वह समझने लगता है कि इसमें मुझे कुछ अड़चन होती है; मुझे व्यवस्था करने का अधिकार प्राप्त करना चाहिये। तब मैं इससे भी अच्छा प्रबंध करूंगा। उसे इस बात का विश्वास होता है। यह बात नहीं कि वह अच्छी ही व्यवस्था रख सके। अगर वह फजूल-खर्च हुआ, तो अपने बाप की सारी दौलत फूँक डालेगा। लेकिन वह इन बातों को समझता है। आगे चलकर इन दोनों में विरोध न खड़ा हो, इसी लिये यह नियम बना दिया गया है कि जब लड़का २१ बरस का हो जाय, तब ट्रस्टी उस की देखभाल छोड़ दें और सब कुछ लड़के के सुपुर्द कर दें। जो बात व्यवस्था की है, वही राष्ट्र के लिये भी ठीक उतरती है। जिस समय राष्ट्र के लोग सुशिक्षित हो जायँ और यह समझने लगें कि हमारा प्रबन्ध किस प्रकार होना चाहिये,

उस समय उनमें इस बात की इच्छा उत्पन्न होना बहुत ही स्वाभाविक है कि हमारे लिये जो काम पराए लोग करते हैं, वे काम हमारे हाथ में आ जायँ। लेकिन इतिहास अथवा राज-कार्यों में मजा यह है कि उसमें वह २१ बरस वाला नियम लागू नहीं होता। यदि प्रथम कभी ऐसे नियम की भी कल्पना की जा सके कि सौ बरस तक तुम ने इस राष्ट्र को शिक्षा दी, अब तुम सब कारबार उसके हाथ में दो, तो भी उसका पालन सम्भव नहीं है। यदि इसका पालन करना हो, तो उसे लोगों ही को करा लेना चाहिये, उन्हीं का इस पर अधिकार है। इस समय इसी प्रकार की व्यवस्था होनी चाहिए। पहिले कुछ इसी प्रकार की व्यवस्था थी; लेकिन आज-कल यह व्यवस्था नहीं है। और हमारी इन सब माँगों का, हम लोगों को जो दुःख होता है, हम में जो त्रुटियां हैं, राजकार्यों में हम लोगों को जो असुविधाएं दिखाई देती हैं, उन सब का मूल इसी में है। इस मूल का पुनरुत्थान करके उसके लिये जो उपाय बनाए गए हैं, उसको होमरूल कहते हैं। उसी का नाम स्वराज्य है। संक्षेप में यह कि अपने सम्बन्ध की व्यवस्था अपने हाथ में रखने की माँग ही स्वराज्य की माँग है।

लोगों के हाथों में अधिकार देना राज-कार्य का उत्कृष्ट तत्व है। इसके सम्बन्ध में कोई कुछ नहीं कहता। क्योंकि जो लोग यहां अधिकारी हैं, उनके देश में यही प्रथा प्रचलित है। वहां जाने पर उन्हें इसी तत्व का प्रतिपालन करना पड़ता है। तब यह कोई नहीं कहता कि इतिहास का यह तत्व बुरा है। इसमें बुराई क्या है? वे यह बात स्पष्ट रूप से कहते हैं कि भारतवासी अभी स्वराज्य के योग्य नहीं हैं (हँसी) और हम लोगों में से कुछ लोग ऐसे हैं, जो पंचतंत्र में कहे हुए

"त्रयाणां धूर्त्तानाम्" की तरह के हैं। उनकी कहानी इस तरह है कि एक बार एक देहाती सिर पर एक भेड़ी लिये आता था। एक धूर्त्त ने उससे कहा कि तुम्हारे सिर पर बकरी है। दूसरे ने कहा तुम्हारे सिर पर कुत्ता है। तीसरे ने एक निराली ही बात कही। इस पर उसने उस भेड़ी को उतार दिया। वे तीनों धूर्त्त उस भेड़ी को लेकर चल दिये। वैसी ही हमारी भी स्थिति हो रही है। यह मनुष्य स्वभाव की बात है। इसी तरह के कुछ लोग हम में भी हैं।

हम लोग क्यों योग्य नहीं हैं? इसी लिये कि हम में योग्यता नहीं लाई गई है। हम लोगों ने ऐसा काम नहीं किया है; हमारे माँ-बाप ने भी नहीं किया है। हम लोगों को कभी ऐसे अधिकार नहीं मिले। लेकिन सरकार ने हमें कौंसिल में तो कुछ अधिकार दिये हैं। मि० सिंह, मि० चौबल प्रभृति लोग कौन्सिल में हैं। दूसरे स्थानों की एक-ज़िक्युटिव कौन्सिलों में भी चुने हुए लोग हैं। ये लोग जिस समय चुने गए थे, तब उनमें से क्या कभी किसी ने यह भी कहा था कि हम पात्र नहीं हैं; हमें यह जगह मत दो? किसी ने भी नहीं कहा था। (तालियाँ) तब हमारी सभा में आ कर उन्हें ये सब बातें कहने से क्या लाभ है? जिस समय ब्युरॉक्रेसी इन्हें कोई भारी अधिकार देने लगे, उस समय यदि ये लोग उठ कर खड़े हों और कहें कि "यह अधिकार हमें मत दो; हम इसके योग्य नहीं हैं। हमारे यहाँ का श्राद्ध ब्राह्मण लोग ही आकर करावें, हम लोगों से वह नहीं हो सकता" तब मैं समझूँगा कि हाँ, वे लोग ठीक कह रहे हैं। मेरी समझ में जो लोग किसी की नाराजगी का ख्याल रख कर ऐसी बातें कहते हैं और इस प्रकार के कारण दिखलाते

हैं, वे अपने दुर्बल स्वभाव का प्रदर्शन करते हैं। (तालियाँ) हम लोग क्यों पात्र नहीं हैं? क्या हमें नाक नहीं है? आँखें नहीं हैं? कान नहीं हैं? बुद्धि नहीं है? लिखना नहीं आता है? पढ़ना नहीं आता है? घोड़े पर बैठना नहीं आता? हम क्यों पात्र नहीं हैं? शेक्सपीयर के एक नाटक में एक यहूदी ने जिस प्रकार पूछा है, उसी प्रकार मैं भी आप से पूछता हूँ कि हम में क्या नहीं है? हम ने काम नहीं किया है। हमें काम मिला ही नहीं, तो हम करें कहाँ से? (तालियाँ) क्या कभी ऐसा भी हुआ है कि तुम ने काम दिया और हम ने नहीं किया? उस समय तो किसी ने नहीं कहा कि हम अयोग्य हैं; हमें मत नियुक्त करो। तुम उन्हें नियुक्त करते हो, उनसे काम लेते हो और पीछे से सरकारी नियमों में यह भी कहा जाता है He has done his duty and so on इसके अतिरिक्त हम यह पूछते हैं कि २१ बरस की उमर का जो आदमी तुम विलायत से लाते हो, क्या उसे पहिले ही से पूरा काम करना आता है? उसे क्या करना आता है? उसे अनुभव कहाँ रहता है? वह यहाँ आते ही Assistant Collector हो जाता है और डिप्टी कलेक्टर चाहे ६० बरस का भी क्यों न हो, पर वह उसका अफसर हो जाता है। कहाँ २१ बरस का कलेक्टर? (तालियाँ) ६० बरस का अनुभव कोई चीज ही नहीं है? २१ बरस का आदमी आता है और हम पर हुकम चलाने लगता है। वह साठ बरस के डिप्टी कलेक्टर को प्रायः अपने सामने खड़ा ही रखता है; बैठने के लिए कुरसी तक नहीं देता। उस बिचारे को १५०) २००) ४००) मिलते हैं, इसलिये उसे हाथ जोड़ कर उसके सामने खड़ा रहना पड़ता है। (तालियाँ) कभी किसी ने इस बात का

भी विचार किया है कि साहब बहादुर को अनुभव कैसे होगा, वह पात्र कैसे होगा और यह काम कैसे चलेगा ?

अगर यह बात ठीक होती कि हिन्दुस्थान के लोग स्वराज्य के योग्य नहीं हो सकते, तो पुराने जमाने में—इस देश में हिन्दुओं और मुसलमानों ने कभी राज्य न किया होता। इस देश में पहिले अपने ही राज्य की व्यवस्था करने वाले लोग थे। इसका सब से बड़ा प्रमाण यही है कि अंग्रेजी सरकार के आने के पहिले यहाँ कुछ न कुछ व्यवस्था अवश्य थी, सब जगह अन्धाधुन्धी नहीं थी। एक आदमी दूसरे को मार नहीं डालता था। जब ऐसी अवस्था थी, तब यह कैसे कहा जाता है कि ये लोग पात्र नहीं हैं ? आज-कल शास्त्रों की वृद्धि हुई है, जानकारी बढ़ी है और अनुभव का एक जगह संग्रह हुआ है। इसलिये पहिले की अपेक्षा अब हम को और भी स्वतन्त्रता चाहिए और हम लोगों को अधिक पात्र होना चाहिए। सो तो होता नहीं, उल्टे कहा जाता है कि हम लोग पात्र नहीं हैं। यह कहना बड़ी भारी भूल है कि पहिले हम में जो कुछ था, उसे जाने दो। तुम्हारा यह कहना "तुम्हें हम देना नहीं चाहते" ठीक है। इसके बदले में यह मत कहो कि तुम योग्य नहीं हो; जिसमें हमें यह तो अच्छी तरह मालूम हो जाय कि तुम हमें देना नहीं चाहते। हम लोगों को स्वराज्य मिलेगा, लेकिन वह हम लोगों को क्यों नहीं मिलता ? परियाय से कहा जाता है कि हम लोग उसके पात्र नहीं हैं। हम लोगों को सिखाने के लिये तुम लोग यहाँ आए हो। हम यह बात मानते हैं। लेकिन तुम कितने दिनों तक सिखाते रहोगे (हँसी) एक पीढ़ी, दो पीढ़ी, तीन पीढ़ी। कहीं इसका ठिकाना भी है ? कि सदा हम तुम्हारे

ही आधीन रहेंगे। (तालियाँ) कुछ सीमा बाँध दो।

तुम हमें सिखलाने के लिए आए हो। जिस समय हम लोग लड़कों के लिये घर में शिक्षक नियत करते हैं, उस समय उससे पहिले पूछ लेते हैं कि तुम एक बरस में, दो बरस में, तीन बरस में, कितने दिनों में लड़के को सिखलाओगे ? अगर हमारे अनुमान से उसने दो चार महीने अधिक बतलाये; छः महीने में लड़के को जितना अभ्यास हो जाना चाहिए, उतने के लिये यदि उसने साल भर का समय लगाया, तो हम उससे कह देते हैं कि तुम किसी काम के आदमी नहीं हो। जाओ, हम दूसरा शिक्षक रख लेंगे। (तालियाँ) इस प्रकार उन सब लोगों पर, जिनकी शिक्षा इन अधिकारियों के हाथ में है, जिन्हें सुधारना इन अधिकारियों का कर्त्तव्य है, वह कर्त्तव्य-पालन करना तो एक ओर रहा, प्रयत्न होता है दूसरी ओर। कहते हैं कि हम चाहे कितना ही प्रयत्न क्यों न करें, इन लोगों का इस काम के लिये तैयार हो सकना ही असम्भव है...... ....

तुम्हारे सरीखे आदमी, तुम्हारे जैसे बुद्धिमान, तुम उन्हें काम पर लगाते हो; उन से काम लेते हो और यह बात भी नहीं है कि उन पर सख्ती कम करते हो। खालसा * मुल्कों में क्या हो रहा है ? व्यवस्था कुछ रुकी हुई नहीं है। मैसूर में कौन सा काम रुका पड़ा है ? कौन लोग काम करते हैं ? मैसूर के राजा हिन्दू, मन्त्री हिन्दू, प्रजा हिन्दू और नीचे के अधिकारी भी हिन्दू ही हैं। जब वे मैसूर जैसा बड़ा राज्य चला लेते हैं, तब मैसूर के बाहर के जिलों में कहा जाता है कि इन लोगों से काम नहीं चल सकता। (हँसी और तालियां)

* यहां तात्पर्य देशी रियासतों से है।

लेकिन मैं यह पूछता हूँ, बादशाह को इस से क्या कि सिविल सर्विसवाले कारबार चलावें या हमारे बेलवी साहब चलावें ? [तालियां] क्या इस में बादशाह का कोई नुकसान है ? वह राज्य कायम ही है, और बादशाह भी कायम हैं। फर्क यही होगा कि पहिले उनके पास जो गोरा नौकर था, उसकी जगह अब काला होगा। [तालियां] तब यह विरोध कौन करता है ? जो लोग अधिकारारूढ़ हैं, वेही ऐसा विरोध करते हैं। इस में बादशाह की ओर से विरोध नहीं होता। बादशाह की दृष्टि से इस में कोई अराजकत्व या राजनिष्ठा का अभाव नहीं है; राजद्रोह भी नहीं है। राजद्रोह का मतलब है राजा का द्रोह। लेकिन राजा के माने क्या सिपाही है ? [हँसी] मैं ने पहिले ही कह दिया है कि यह भेद पहिले से ही स्पष्ट करना चाहिए। अगर कल आप यह कहें कि पुलीस के सिपाही को निकालो, तो क्या इस में राजद्रोह हो जायगा ? पुलीस के सिपाही ऐसा ही समझते हैं। [हँसी] इसी तरह जरा और ऊपर बढ़िये, तो आपको मालूम हो जायगा कि जो कुछ आप मांगते हैं, वह ठीक है; उचित है; न्याय्य है; मनुष्य-स्वभाव के अनुसार है। दूसरे राष्ट्रों ने भी वही किया है।

मेरी समझ में हम लोग स्वराज्य के पात्र हैं। अब मैं आप को थोड़े में यह बतलाऊँगा कि हम लोग क्या प्राप्त करना चाहते हैं और हम लोगों को मांगना क्या चाहिये ? और तब मैं अपना भाषण समाप्त करूँगा। आप लोग यह जानते हैं कि हिन्दुस्थान का राजकार्य्य कैसा है। लेकिन उस में बतलाने की बात यह है कि वह बृटिश नियमों के अनुसार होता है। उसके नियम निर्धारित हैं। चाहे स्टेट-सेक्रेटरी के

अधिकार हों और चाहे गवर्नरजेनरल के अधिकार। उस पद्धति के तीन बड़े विभाग हैं। विलायत में स्टेट-सेक्रेटरी साहब हैं। हिन्दुस्थान में—दिल्ली में गवर्नर-जेनरल हैं। इन के नीचे इलाकों में एक एक गवर्नर हैं। इन के नीचे के कर्मचारियों को अभी जाने दीजिए। लेकिन बड़ी व्यवस्था ऐसी ही तीन प्रकार की है। अब यदि उस में हर एक के विषय में विचार किया जाय, तो देखना होगा कि स्टेट-सेक्रेटरी को कौन नियुक्त करता है? हम नहीं करते। यह जो रचना हुई है, वह कम्पनी सरकार के सिद्धान्तों पर हुई है। जिस समय इस देश में ईस्ट इन्डिया कम्पनी का राज्य था, उस समय सब काम व्यापारी नीति पर होता था। इसी बात की ओर सब से अधिक ध्यान दिया जाता था कि कम्पनी के हिस्सेदारों को अधिक से अधिक मुनाफा कैसे मिले। कम्पनी के जो डाइरेक्टर होते थे, वे आज-कल के स्टेट-सेक्रेटरी की जगह पर रहते थे।

आप कह सकते हैं कि राज्य चलाने के लिये एक प्रकार का ठेका दिया हुआ था। पेशवाओं के समय में मामलतदारी ठेके पर दी जाती थी। कम्पनी के समय के सरकारी कानूनों के अनुसार भारत का शासन ईस्ट-इण्डिया कम्पनी का व्यापार था। उससे जितना लाभ हो सके, उठाया जाता था। कम्पनी के डाइरेक्टर विलायत में रहते थे। उनका ध्यान सदा इस बात की ओर रहता था कि डाइरेक्टरों अर्थात् हिस्सेदारों को कितना नफा मिलना चाहिये। वहां से गवर्नर-जेनरल के पास पत्र आते थे कि इस साल हमें इतना मुनाफा मिलना चाहिये। इतनी आमदनी करके हमारे पास भेजो। शासन की ऐसी व्यवस्था थी कि लोगों का उसमें तनिक भी हित नहीं था।

जिस समय यहाँ का शासन महारानी विक्टोरिया ने, या यों कहिये कि पार्लीमेण्ट ने अपने हाथ में लिया, उस समय उन्हें भी यह व्यापारिक पद्धति पसंद नहीं आई थी। उन्हों ने यहाँ का राज्य-प्रबन्ध तो अपने हाथ में ले लिया, लेकिन वह राज्यपद्धति फिर भी उसी व्यापारिक नीति के अनुसार चलाई गई कि जिसमें विलायत में डाइरेक्टर रहते थे और उनके नौकर यहाँ काम करते थे। पर अब डाइरेक्टरों की जगह स्टेट-सेक्रेटरी हैं। उनका जो गवर्नर होता था, उनकी जगह पर अब भी गवर्नर-जेनरल हैं। और तब हुआ क्या? प्रबंध तो राजा ने अथवा पार्लीमेण्ट ने अपने हाथ में लिया सही, लेकिन नौकरों की जो प्रणाली थी, वह ज्यों की त्यों बनी हुई है। उपर्युक्त बात सन् १८५८ वाले विद्रोह के बाद हुई। तब से आज तक बराबर उसी कम्पनी की नीति पर बने हुए नियमों के अनुसार हिन्दुस्थान का कारबार चल रहा है। यदि राज्य-प्रबन्ध वास्तव में राजा के हाथ में चला गया था, तो उस दशा में कम्पनी का यह स्वरूप भी बदल जाना चाहिये था। वे राजा हैं और हम उनकी प्रजा हैं। प्रजा का कल्याण करना राजा का धर्म है; और उसी धर्म के अनुसार जो नियम हों, उनके अनुसार व्यवस्था होनी चाहिए। लेकिन यह व्यवस्था ऐसी हुई कि डाइरेक्टर गये और उनकी जगह पर स्टेट-सेक्रेटरी आए। अब हिन्दुस्थान में कितना धन खर्च होना चाहिये और कौन सा कर लगाना चाहिये, यह कौन तय करने लगा? स्टेट-सेक्रेटरी। गवर्नर जेनरल के हाथ में ये अधिकार नहीं रक्खे गये हैं। यहाँ मुख्य अधिकारी ये ही हैं। इनके नीचे गवर्नर नौकर हैं और उनके नीचे दूसरे नौकर हैं तथा सब कारबार उन्हीं स्टेट-सेक्रेटरी की सम्मति, विचार और सलाह से होता है। यही आज-कल का सिद्धान्त

है। आगे क्या हुआ? शासन प्रबंध महारानी विक्टोरिया के हाथ में चले जाने पर यद्यपि उन्हों ने बड़ा भारी घोषणा-पत्र निकाला, पर तो भी उस घोषणा-पत्र के सिद्धान्त पर शासन नहीं हुआ। राजकीय सिद्धान्त वही व्यापारी कम्पनी के सिद्धान्त पर और राजकीय व्यवस्था भी उसी कम्पनी के सिद्धान्त पर रहा और घोषणा-पत्र बीच के बीच ही में व्यर्थ हुआ। (हँसी और तालियाँ)

फिर व्यवस्थापक सभाएँ (कौंसिल) निकलीं। वे भी ऐसी कि जिनमें गवर्नर-जेनरल ही हम लोगों को नियुक्त करें। पहिले लोगों को चुनने का अधिकार नहीं था। धीरे धीरे म्युनिसिपालिटयों में हमारे काम करने वाले घुसे। व्यवस्थापक सभाएँ तो हो गईं, पर अन्तिम कुंजी अब भी उन्हीं के हाथ में है। व्यवस्थापक सभाओं में वादविवाद कीजिए, वादविवाद करने का आप को पूरा अधिकार है; यह धन इस काम में खर्च हो, इसके लिये वादविवाद कीजिए, खर्च होगा या नहीं, यह वे तय करेंगे। आप अपने मुँह और मन में चाहे जितना काम कीजिये, इसमें उनका कोई हर्ज नहीं है। रात भर जागकर अपनी स्पीचें तैयार कीजिये, अन्य समाचार-पत्रों के बदले में आप उसे बम्बई गजट में छाप सकेंगे। बस, इतना ही फर्क है। इसमें मिला कुछ भी नहीं? मिलने की आशा दिखाई जाती है। महाभारत में एक श्लोक है, उसमें कहा गया है—"आशां कालवतीं कुर्यात्।" अधिकार हमें दिए जायंगे, लेकिन जब हम उसके पात्र हो जावेंगे तब। वे कहते हैं कि हम हिन्दुस्थान में नहीं रहना चाहते। जहाँ तुम तैयार हुए, तहाँ हम यह तुम्हारी थाती तुम्हारे सुपुर्द करके स्टीमर पर बैठकर विलायत चले जायँगे। (तालियां) किन्तु इसके लिये कुछ

समय निश्चित होना चाहिये। दो वर्ष में देंगे या दस वर्ष में देंगे। आगे चलकर ऐसा समय आया कि—"कालं विघ्नेन योजयेत्।" दस वर्ष कहे गए थे, लेकिन ये दस वर्ष बड़े खराब बीते, इसलिये उन सब को बढ़ाकर पंद्रह करना पड़ा। 'आशां कालां विघ्नेन योजयेत्" विघ्न आए। तुम्हीं ने विघ्न डाल होंगे। हम ने तो नहीं डाले। हम तो अच्छे समय की प्रतीक्षा करते थे। अब उसमें कुछ और बहाना मिलना चाहिए था। उन्हें बहाना मिला। बहाना कैसा मिला? उसे बहाना ही नहीं कह सकते। इस लिये कोई दूसरी तरह का बहाना निकाला। यह एक प्रकार की नीति है। जब तुम्हें देना ही नहीं है तब कहते क्यों हो? यह बात नहीं है कि ये सब बातें आज-कल के नीति-शास्त्र और राजकीय ग्रन्थों में लिखी हों। पुरानी परंपरा चली आई है। यह ब्युरॉक्रेसी बराबर इसी तरह हमें टाल रही है। पिछले पचास बरसों से स्टेट-सेक्रेटरी और गवर्नर जेनरल तक इसी तरह टालते आ रहे हैं। जहां तुम ने जरासी गड़बड़ की, तहां हम कल ही पांच की जगह छः मेम्बर कर देंगे। लेकिन उन पांच के छः हो जाने से हमारा क्या लाभ? खाली हम में से एकाध और आदमी को वहां व्यर्थ चार दिन गँवाने पड़ेंगे। (तालियां) इसके सिवाय उससे और कोई लाभ नहीं है। अगर तुम छः के बारे में भी झगड़ो, तो हम आठ कर देंगे और उसके जवाब में अगर जरूरत होगी, तो हम अपनी ओर के दस से बारह कर लेंगे। (हँसी और तालियाँ) लेकिन इस तरह कोई नतीजा नहीं निकल सकता। ये बातें अच्छी तरह लोगों की समझ में आ चुकी हैं।

तुम्हें जो कुछ अधिकार हमें देना हो, वे हमें पूरी तरह से

दो। तुम्हारे अधिकार चाहे कितने ही बड़े क्यों न हों। एक शिक्षा-विभाग ही की व्यवस्था लीजिये, उसमें बहुत से नीचे काम करनेवाले हम लोगों में से हैं। ऊपर एक साहब रहता है। वह इस लिये रक्खा जाता है कि जिस में वह उनके मुँह और बुद्धि की लगाम खींचे रहे। आप चाहे बीस नहीं, तीस वर्ष तक नौकरी करो, तो भी यही कहा जाता है कि साहब के बिना काम नहीं चल सकता.........इसमें दो भेद दिखाई देते हैं। यहां जब किसी माली को बाग तैयार करने के लिये कहा जाता है तो वह पहिले गमले देखता है, लेकिन फॉरेस्ट डिपार्ट में जब बड़े बड़े पेड़ तैयार करने होते हैं, तब गमलों की जरूरत नहीं होती; बीजों के थैले आते हैं और खाली कर दिये जाते हैं। तब पेड़ खूब मनमाने बढ़ते हैं, उनमें से कुछ छोटे भी होते हैं और कुछ बड़े। यही अवस्था यहां भी है। केवल इसी कारण हम लोगों के पेड़ बढ़ने नहीं पाते, बल्कि इस बात की भी चिन्ता रहती है कि बाग में गमलों में लगाए हुए पौधे छोटे और सुन्दर दिखाई देंगे और उनके फूल हाथ से तोड़े जा सकेंगे। उन्हें उसी ढंग पर चलाया जाता है जिस में वे छोटे ही रहें; बढ़े नहीं। इसी प्रकार उनके साथ व्यवहार किया जाता है और इसी प्रकार उनसे काम लिया जाता है। इसी तरह पचीस या तीस बरस के बाद ये लोग कहने लगते हैं कि हम लोग असल में काम के योग्य नहीं हैं। हमें अंगरेज़ी सरकार चाहिए, हमें इसी राज्यछत्र के नीचे रहना है; लेकिन हमें यह पद्धति नहीं चाहिए। स्टेट-सेक्रेटरी के नाम से जिस दामाद (हँसी) की ओर इशारा किया जाता है, वह हमें नहीं चाहिये और नहीं तो कमसे कम इतना तो अवश्य चाहिए कि उस सम्मति देने वाले

मंडल में हमारे चुने हुए लोग रहें। यह पहिला सुधार होना चाहिए । इसके सिवाय हम लोगों के मत से यह भी निश्चित होना चाहिये कि हिन्दुस्थान का खर्च कौन करेगा, धन कितना संग्रह किया जायगा और कर कितना लगाया जायगा। (तालियां) जो कर हम बतलावें, वह उठा दिया जाना चाहिए। यदि वह कहें कि खर्च कैसे चलेगा, तो हम आगे चलकर देख लेंगे। हम इतना जानते हैं कि पास में जितना धन होता है, उतना ही खर्च करना पड़ता है और जितना खर्च होता है, उतना ही रुपया वसूल भी करना पड़ता है; हम इस बात को अच्छी तरह समझते हैं।

होमरूल का दूसरा तत्व यह है कि अधिकार लोगों के हाथ में रहना चाहिये; अच्छे आदमियों के हाथ में अर्थात् लोगों के चुने हुए आदमियों के हाथ में रहना चाहिये। आज कल युरोप में बहुत बड़ी लड़ाई हो रही है। लड़ाई में कितना रुपया खर्च होना चाहिए, यह बादशाह नहीं निश्चित करते; मि० आसक्विथ निश्चित करते हैं। अगर मि० आसक्विथ के किए हुए काम पर लोगों को कुछ आपत्ति हुई, तो वह विषय पार्लामेंट के सामने जाता है और अगर मि० आस-किथ से काई भूल हो जाय, तो उन्हें इस्तीफा देना पड़ता है। अगर उनके इस्तीफा देने की नौबत आ गई, तो क्या राजद्रोह हो गया ? व्यवस्था में अंतर है। प्रबन्ध में अन्तर है, पद्धति में अन्तर है; और पद्धति में पूरा अन्तर हम लोग चाहते हैं। राज्य डूबेगा या राज्य जायगा, ये सब विचार बिलकुल कोरे हैं। वे हमारी मर्यादा, हमारी दृष्टि में आते ही नहीं और न हम इन बातों को चाहते हैं। फिर भी; हम यह कहते हैं कि यदि राष्ट्र को सुखी करना हो—आज जो हजारों झगड़े उप-

स्थित हैं, उन्हें यदि दूर करना हो, तो पहिले इस राज्यपद्धति को बदलो। मराठी में (हिन्दी में भी) एक कहावत है "घोड़ा अड़ा क्यों ? पान सड़ा क्यों ? रोटी जली क्यों ?" तो इन सब का एक ही उत्तर है—न फेरने के कारण। पान को उलटना पुलटना चाहिये था; रोटी को भी उलटना पुलटना था। इसी तरह घोड़े को भी अगर फेरा होता, तो वह न रुकता। इस का मतलब यह है कि जंगलों के झगड़े, आबकारी के झगड़े, गांव और जमींदारी के झगड़े केवल हमारे हाथ में सत्ता न होने के कारण हैं। (तालियाँ) हम लोगों को स्वराज्य मिले, यही उसको दूर करने का मूल है।

स्वराज्य की मांगें ऐसी हैं कि उनके साथ राजद्रोह का कोई संबंध ही नहीं है। बादशाह का भी सम्बन्ध नहीं है। यहाँ तक कि अव्यक्त सरकार का भी संबंध नहीं है। अपने घर की जो कुछ व्यवस्था हो, वह स्वयं करो; इससे यह होगा कि एक तो तुम्हारा मन शांत रहेगा; तुम्हें जो कुछ करना होगा, उसे तुम अपने लिये हितकारक समझ कर ही करोगे। यही नहीं; बल्कि खर्च भी आप ही कम करोगे। मैं नहीं कह सकता कि किसी देशी रियासत में भी कलेक्टर को २५००) तनख्वाह मिलती है या नहीं। संसार भर में कलेक्टर का काम करने वाले मनुष्य को यदि कहीं सबसे अधिक वेतन मिलता है, तो हिन्दुस्तान में ही। (तालियां) पुराने जमाने के राज्यों में एक कलेक्टर को २५००) रुपये तनख्वाह देना मानो तीस हजार सालाना की जागीर देना था। अपने स्वराज्य में क्या हम ने कभी कलेक्टर को तीस हजार की जागीर दी है ? तीस हजार रुपये कम नहीं होते ! लेकिन इसमें एक कारण है। हर एक बात का कुछ न कुछ

कारण होता है और उसे ध्यान में रखना चाहिये !! इन्हें पचीस सौ रुपये विलायत में लड़कों बच्चों के लिये भेजने पड़ते हैं। विलायत की ठंढी हवा में से चलकर यहां की गरम हवा में आकर अपना स्वास्थ्य बिगाड़ना पड़ता है—सिर्फ हमारे कल्याण के लिये। तब फिर उन्हें इतनी बड़ी तनख्वाह क्यों न दी जाय ? उन्होंने इतनी मेहनत की, इतना स्वार्थ-त्याग किया, इतने कष्ट भोगे, तब हम उन्हें इतना रुपया भी नहीं देंगे ? यह बात अगर कही जाय, तो पहिले पहल देखने में यह बहुत ठीक जान पड़ती है; लेकिन अब मुख्य प्रश्न यह है कि उन्हें विलायत से यहां आने के लिये कहा किसने ? (तालियां) हम उन्हें बुलाने नहीं गए थे। जैसी तुम्हारी योग्यता होगी, वैसा तुम काम करोगे। तुम्हारे बराबर योग्यता हम में भी होगी; पर हम तुम से थोड़ी तनख्वाह में काम करेंगे। यहां आदमी मिलते हैं तब फिर क्या उन्हें इतनी अधिक तनख्वाह दी जाती है ? हम लोगों की शिक्षा में व्यय करने के लिये धन नहीं मिलता। कहा जाता है कि लोकोपयोगी कामों के लिये हमारे पास धन नहीं है। इसलिये पहिले इन्हीं सब बातों का अंत होगा। काम खूब अच्छी तरह चलेगा। कदाचित् पहिले अच्छी तरह न चले; रुपये में आठ आना काम चलेगा; लेकिन वह काम हम्हीं लोगों का चलाया हुआ होगा और हम लोगों की अनुमति से ही होगा; इसलिये जो कुछ होगा, उसका मूल्य अधिक होगा।

इस प्रकार अच्छी व्यवस्था करने के लिये इस समय जो कानून हैं, उन्हें दुरुस्त कराना चाहिये। इन्हें पार्लीमेन्ट से दुरुस्त कराना चाहिये। हम और किसी से नहीं मांगने जायंगे। फ्रान्स से प्रार्थना करके नहीं माँगना होगा।

(Allies हों तो भी उनसे प्रार्थना करने की आवश्यकता नहीं) अंग्रेज लोगों से—अंग्रेजी पार्लीमेन्ट से प्रार्थना करनी होगी—यह स्थिति उनके सामने रखनी होगी। इस लिये जो कुछ करना हो, अगर तुम २०।२५ वर्ष तक उसके लिये उद्योग करते रहोगे, तो उसका फल प्राप्त हुए बिना कभी न रहेगा। आज-कल जो लड़ाई छिड़ी हुई है, उस लड़ाई के कारण ऐसा समय आ गया है कि ऐसे उपाय किये जायं, जिनसे हिन्दुस्थान का मूल्य, हिन्दुस्तान का शौर्य, हिन्दुस्तान का धैर्य और उसका स्थैर्य बढ़ सके। अगर सरकार को यह बात मालूम हो जाय कि ये लोग आप ही इस बात की उठान कर रहे हैं, तो आशा है कि हमारी मांग और भी जल्दी सफल हो। इस लिये इस विषय को मैं ने बराबर सामने रक्खा है। दूसरी ओर भी इस विषय की चर्चा हो रही है। इस काम के लिये हम ने जो यह 'संघ' Home Rule League स्थापित किया है, वह ऐसा है कि इस उद्योग के सम्बन्ध में आज नहीं, तो कुछ दिनों बाद प्रत्येक स्थान पर मुझे अथवा किसी और को सब लोगों के सामने इस विषय को उपस्थित करना पड़ेगा। आज इस समय मुझे आप से यही कहना है कि इस विषय की चर्चा बराबर करते रहिये, सदा इस पर ध्यान रखिये, समझिये कि इसका उपयोग क्या है और इस बात की अच्छी तरह मीमांसा कर लीजिए कि इसमें राजनिष्ठा कितनी है और अराजकता कितनी है।

मेरा जो कुछ कथन है, वह चाहे इसकी अपेक्षा अधिक ही क्यों न हो, तो भी मैं ने संक्षेप में उसका सारांश आप लोगों को सुना दिया है। अगर आप लोगों में, महाराष्ट्र में, हिन्दुस्थान में, इस विषय पर विचार आरम्भ हुआ, तो कभी न

कभी इस उद्योग में यश अवश्य ही मिलेगा। बात चाहे परमेश्वर के हाथ हो, पर तो भी वह होगी अवश्य। यह हम मानते हैं कि हमारे हाथ में कुछ नहीं है, लेकिन संसार में कर्म का परिणाम बिना मिले नहीं रहता। कर्म का फल कभी न कभी मिलता ही है। जितनी जल्दी मैं कहता हूँ, चाहे उतनी जल्दी फल न मिले—हमारे देखते चाहे वह न मिले, चाहे हमें उससे कोई लाभ न हो, पर उस कर्म का फल मिलना तो अवश्य चाहिये। (तालियां) और फिर कर्म के नियमानुसार जो कार्य किया जाता है, उससे दूसरा कर्म उत्पन्न होता है, उसी तरह तीसरा उत्पन्न होता है और यह परम्परा बराबर चली जाती है। चाहे देर से हो या जल्दी। हम भी तो यह कब कहते हैं कि हमारी आँखों के सामने ही हमारा मोक्ष हो; हम यह कब कहते हैं कि अमुक मनुष्य के हाथ से ही हो। अभी आप की परिषद् में यह प्रस्ताव पास हुआ है कि मॉडरेट्स और नैशनेलिस्ट्स यों दो पक्ष हमें नहीं चाहिए अर्थात् दोनों में से किसी को स्वराज्य देना बराबर है। अगर कल हमारे सिपाही को भी अधिकार मिले, तो भी उसमें हर्ज नहीं है। तुम कहोगे कि सिपाही इतना बड़ा अधिकार कैसे चलायेगा। पर सिपाही कभी तो मरेगा ही। तब फिर हम देख लेंगे। (तालियां) हमें अधिकार चाहिये, अमुक विशिष्ट प्रकार की सुखकर व्यवस्था हमें चाहिए। वह हमें मिलेगी। हमारे बाल-बच्चों को मिलेगा। उसके लिये जो कुछ उद्योग करना हो, वह करो। इसे अपना कर्त्तव्य समझ कर इसके लिये उद्योग करो। मुझे विश्वास है कि यदि परमेश्वर की कृपा से इस उद्योग का फल तुम्हारी आँखों के सामने न हुआ, तो तुम्हारी अगली पीढ़ी को बिना मिले कभी न रहेगा। (तालियाँ)

दूसरा व्याख्यान।

(अहमदनगर में ता० ३०-५-१७ को दिया हुआ व्याख्यान)

जो मुख्य बात हजारों आदमियों के विचार में उस ठहर चुकी है, जिसके विषय में इस समय चारों ओर चर्चा हो रही है, उसके संबंध में आज मैं आप लोगों से कुछ कहूँगा। वह बात स्वराज्य है। (तालियाँ) अपने घर की जितनी बातें हैं, वे सब आप लोग अपनी सत्ता से करते हैं। यदि मुझे कोई काम करना हो और वह खास मेरा ही काम हो, तो उसके लिये किसी दूसरे से पूँछने की मुझे आवश्यकता नहीं होती, किसी की आज्ञा नहीं लेनी पड़ती, अथवा किसी दूसरे की सम्मति लेने की मुझे आवश्यकता नहीं होती; लेकिन सार्वजनिक विषयों में यह बात नहीं है। जैसा हमारा कल्याण है, वैसा ही और सब लोगों का भी है। लोगों का जीवन-निर्वाह किस प्रकार उत्तम रीति से होगा, उनकी स्थिति अधिक सुखकर किस प्रकार होगी? इन पर विचार करने से हमें मालूम होता है कि जिस बात को हम चाहते हैं, उसी में—हमारे हाथों में सत्ता न होने की बाधा दिखाई पड़ती है।

सार्वजनिक विषयों में अनेक लोगों के अनेक मत हैं। कोई कहता है, "तुम्हारे हाथ में सत्ता क्यों नहीं है? तुम शराब मत पीना, बस मामला खतम है।" उपदेश सचमुच मीठा है; पर केवल उपदेश के सहारे सब लोग नहीं रोके जा सकते। इसके लिये सत्ता की आवश्यकता है। यह सत्ता जिस के पास नहीं, उससे यह काम नहीं हो सकता। यदि केवल उपदेशों ही से काम चल जाता, तो हमें राजा की जरूरत ही न पड़ती। लोगों की जैसी इच्छा हो, उसके अनुसार कार्य

कराने के लिये ही राज्य-व्यवस्था का निर्माण हुआ है। राज्य-व्यवस्था आप के हाथों में न होने से आप में से हज़ारों लोग किसी बात को पसन्द करते हों; और जिनके हाथों में राज्य व्यवस्था है, उन्हें वह पसन्द न हो, तो वैसी बात कभी भी न होने पावेगो। अकालों की व्यवस्था को ही लीजिये। अकालों में जुलाहों की बड़ो हानि होती है, यह बात जिस दिन सरकार के ध्यान में जाती है, उसी दिन इसका थोड़ा बहुत प्रबन्ध कर दिया जाता है। हमारा व्यापार नष्ट हो गया है। आढ़त का कारोबार पहिले से ही चला आता है। वह पहिले न था, और अब नहीं है, सो बात नहीं है। आढ़त का व्यवसाय प्रचलित है। भेद इतना ही है कि आप लोग पहिले जहां हमारे व्यापार के अढ़तिये थे, वहां अब विलायत के व्यवसायियों के अढ़तिये बन बैठे हैं। आप यहां से कपास खरीद कर विलायत भेजते हैं और जब उसी कपास के कपड़े विलायत से बुन कर यहां आते हैं, तो उसे आढ़त पर खरीद कर हमारे हाथ बेचते हैं। आढ़त का रोजगार कायम रहा; उसमें फेर यह हुआ कि आढ़त के रोज-गार से अपने देश का जो अधिक लाभ होता था, वह जाता रहा; अब इससे जो कुछ लाभ होता है, वह विलायत वालों ही को होता है। अस्तु, व्यवसाय सब वही हैं, पर उनकी व्यवस्था में अन्तर आ जाने से हम कुछ भी नहीं कर सकते हैं। वर्त्तमान स्थिति में देश की भलाई का कोई भी काम नहीं किया जा सकता।

पहिले हम समझते थे कि अंगरेजो गवर्नमेंट वास्तव में परकीय है। उसे परकीय कहना राजद्रोह नहीं है। जो वस्तु परकीय हो, उसे परकीय कहना राजद्रोह नहीं—किसी प्रकार का अपराध नहीं है। परकीयता से क्या होता है? परकीय

तथा स्वकीय में जो भेद है वह यह कि परकीय की दृष्टि भिन्न होती है; परकीयों के विचार भी परकीय होते हैं और उनके सामान्य बर्ताव भी इस प्रकार के होते हैं, जिससे वे जिनके लिये परकीय हैं, उनके कल्याण की ओर उनकी विशेष प्रवृत्ति नहीं होती। जो मुसलमान राजा अहमदनगर का शासन करते थे (मैं मुसलमानों को परकीय नहीं कहता) वे इसी देश के निवासी बन गये थे और कम से कम वे यहां के उद्योग धन्धों की वृद्धि चाहते थे। धर्म भिन्न हो सकता है। जो मनुष्य अपने लड़के-बालों को भारत में रखना चाहता हो और जिस के लड़के-बाले यहां रहना चाहते हों, वे यहां रहें। उन लड़के-बालों का, तथा भारत में रहने वाले दूसरे मनुष्यों का कल्याण करने की जिस की इच्छा हो, वह परकीय नहीं। परकीयता से मेरा अभिप्राय धर्म सम्बन्धी परकीयता से नहीं है।

जो मनुष्य इस देश के निवासियों की भलाई का कार्य करता है, वह परकीय नहीं हो सकता। फिर इससे कोई मतलब नहीं कि वह मुसलमान हो या अंगरेज। परकीयता का सम्बन्ध हिताहित से है। परकीयता निश्चय ही गोरे या काले चमड़े में नहीं रहता। परकीयता धर्म में नहीं है। परकीयता व्यापार व्यवसाय में नहीं है। जिस देश में रहना है, जिस देश के लोगों में मिल कर अपने बाल-बच्चों को रखना है, जिस देश में अपनी भावी सन्तानों को रहना है, उसके सुदिन लाने, उसका कल्याण करने, उसके हित के काम करने की इच्छा रखने वाले मनुष्य को मैं परकीय नहीं समझता। कदाचित् वह मेरे साथ एक ही देवमन्दिर में प्रार्थना करने न जायगा, कदाचित् मेरे और उसके रोटी, बेटी का व्यवहार न होगा; किन्तु ये सब प्रश्न

छोटे हैं। जो मनुष्य भारत के कल्याण के निमित्त प्रयत्नशील हो, वह हमारी राय में परकीय नहीं............

प्रारम्भ में हम लोगों का विश्वास था कि सरकार को खबर होने पर वह तुरन्त ही हमारे इच्छानुसार कार्य करने लगेगी। ऐसा हम समझते थे। किन्तु सरकार परकीय है। उसे असल मामले की खबर नहीं होती। यदि हम में से १०।५ प्रमुख लोग एकत्र हो कर कहें, तो वह उस पर ध्यान दे। वह इतनी उदार बुद्धि की, इतनी चतुर है कि उसे इस बात की खबर होते ही वह इसपर ध्यान देगी और इसका प्रतिकार करेगी। पर खेद है कि यह समझ धीरे धीरे जाती रही। सरकार के ५० वर्षों का बर्ताव ही इसका कारण हुआ। आप कितना ही शोर गुल करें, कैसा ही आन्दोलन करें, कितने ही कारण दिखावें, उसी की (सरकार की) रिपोर्टों के अंक उसके सामने उपस्थित करें, तथापि उसकी आँखों में कुछ ऐसा रोग हो गया है कि उसे स्वयं अपनी ही रिपोर्टों के अंक नहीं सूझ पड़ते। वह दलील (तथा) वे ही कारण उसे मान्य नहीं होते। हम लोग कोई बात कहें, तो वह उसी बात को पकड़ बैठती है, जो हमारे कथन के विरुद्ध हो।

संभव है कि आप से कोई कहे कि इसमें तो कोई विलक्षणता की बात नहीं है। आप का राज्य मुसलमानों का रहा हो या हिन्दुओं का; पेशवाओं का रहा हो या नगर के बादशाहों का; (पर) अब ये सभी राज्य नष्ट हो कर अंगरेजों का अधिकार स्थापित हुआ है। अतः उनका अपने फायदे के लिये काम करना उचित ही है. फिर इस पर आप लोगों को चिल्लाने का क्या कारण है? हम में से बहुतों का ऐसा ही मत है। कुछ लोगों का यह कहना है कि आप की यह चिल्लाहट

केवल सरकार का जी दुखाने तथा उसके मन में एक प्रकार का विकार उत्पन्न करने का कारण होती है। अतएव इस शोर गुल का बंद कीजिये। वह जो कुछ दे, उसे प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार कीजिये। वह रोटी का चौथाई टुकड़ा दे, तो उसे आनन्द से स्वीकार कीजिये और इसके लिये उसका एहसान मानिये। मैं इन सब बातों को नापसन्द करता हूं।

मेरा मत यह है कि कोई गवर्नमेंट—चाहे वह इंगलैण्ड की हो या और कहीं की; गवर्नमेण्ट की हैसियत से जो उसका एक प्रकार का कर्त्तव्य है। गवर्नमेंट का जो एक प्रकार का धर्म है। उस पर जो एक प्रकार का दायित्व है, उस दायित्व की जब वह उपेक्षा करती है, तो मैं कहता हूं कि वह गवर्नमेंट ही नहीं। गवर्नमेंट का अधिकार है। गवर्नमेंट का साधारण लोगों पर जो प्रभुत्व है, चाहे वह उसने युद्ध में जीत कर प्राप्त किया हो या लोगों ने ही उसे भूल कर सौंपा हो.........तथापि गवर्नमेन्ट के कुछ कर्त्तव्य अवश्य हैं। हमारे और आप के जैसे कुछ कर्त्तव्य हैं, वैसे ही जिसे हम गवर्नमेंट कहते हैं, उसके भी कुछ कर्त्तव्य अवश्य हैं। कुछ कार्य उसे अवश्यमेव कर्त्तव्य हैं। गवर्नमेन्ट ने कुछ कर्त्तव्य स्वीकार कर लिये हैं।

कोई मनुष्य गवर्नमेन्ट की उत्तमता का प्रतिपादन करने लगता है, तो वह आप को क्या दिखाता है? हमेशा यही जवाब दिये जाना है कि गवर्नमेन्ट ने सड़कें खुदवाईं, रेलें चलवाईं, तार और डाकखाने स्थापित कराये, क्या उसने ये सुभीते आप के लिये नहीं किये? तब आप क्यों गवर्नमेंट के नाम पर चिल्लाया करते हैं? मैं यह नहीं कहता कि ये बातें नहीं की गईं, पर जितनी की गई हैं, उतनी काफी नहीं हैं। ये बातें की गईं और अच्छी तरह की गईं। पहिले के राज्यों ने ये

बातें नहीं की थीं; अंगरेजी गवर्नमेन्ट ने इन्हें किया और उनसे बढ़कर किया—यह उसके लिये शोभा की बात है। परन्तु जो कार्य वह नहीं करती है, उन्हें हम उसे क्यों न बतावें? जो काम उसने नहीं किया, जिसके करने की स्वयं उसकी इच्छा नहीं दिखाई पड़ती—अनेक भांति से समझाने पर भी जिस ओर उसका ध्यान नहीं जाता—उस बात को हम न कहें?

हमारे देश पर ब्रिटिश राष्ट्र की जो सत्ता है, उस पर आघात न पहुंचाते हुए, उसे कमजोर न बनाते हुए, उसे स्थिर रख कर, आप जो कुछ करना चाहें कर सकते हैं—यह कथन किसी प्रकार राजद्रोहपूर्ण नहीं हो सकता। हमें अंगरेजों के आधिपत्य की आवश्यकता है, पर बीच के भंडारियों की नहीं (तालियां)। धान्य यजमान का है, सामग्री यजमान की है, पर बीच में इन भंडारियों का न मालूम क्यों पेट दर्द करता है। अतः उन्हें बरखास्त कीजिये और वे अधिकार लोगों को दीजिये, जिसमें वे अपने अपने घरों की व्यवस्था यथोचित देख सकें। इसी प्रकार का स्वराज्य हम चाहते हैं।

स्वराज्य का अर्थ यह नहीं है कि अंगरेजी गवर्नमेंट दूर कर दी जाय, सम्राट् का आधिपत्य राष्ट्र से हटा दिया जाय या उसके स्थान में देशी राज्यों में से किसी एक का आधिपत्य स्थापित किया जाय। अर्थात् हमें देवताओं को अलग नहीं करना है, बल्कि उनके पुजारियों को अलग कर देना है। देवता को रखना है, पर इन पुजारियों की कोई आवश्यकता नहीं। हमारा दूसरा कहना यह है कि इनकी जगहों पर हम लोगों में से ही नियुक्त किये जायँ। कलेक्टर, कमिश्नर आदि मध्यस्थ बिलकुल अनावश्यक हैं। आज-कल आप लोगों पर कौन प्रभुता चलाता है? सम्राट् आकर नहीं चलाते? क्योंकि वे

विलायत में रहते हैं। हमारी कुछ बातें उनके कान तक पहुंचाई जायं, तो वे आप के कल्याण की कुछ व्यवस्था करें। फिर आपका कल्याण क्यों नहीं होता? इस लिये ये पुजारी.........

अतः स्वराज्य कहाँ है? (तालियाँ) स्वराज्य शब्द का अर्थ जैसा कि मैं पहिले बतला चुका हूँ, यह है कि सम्राट् तथा अंग्रेज जाति की सत्ता अक्षुण्ण बनी रहे और शेष सम्पूर्ण व्यवस्था करने का अधिकार पूर्ण रूप से लोगों के अधीन कर दिया जाय। यही स्वराज्य की परिभाषा है। जो कुछ हम माँगते हैं उसका यह मतलब नहीं कि अंगरेज गवर्नमेन्ट के अधिकार कम हो जाँय या वह यहां से चली जाय और उसकी जगह जर्मनों का अधिपत्य स्थापित हो। इसके विरुद्ध वर्त्तमान युद्ध में यह सिद्ध हो चुका है और समस्त संसार ने इसे देख लिया है कि जर्मन गवर्नमेण्ट का यहाँ आना हमें किसी प्रकार इष्ट नहीं है। यही नहीं, इसी गवर्नमेन्ट का अधिपत्य इस देश में स्थिर रहे इसी के लिये हमारे हज़ारों लोग आज अत्यन्त दूर तथा ठंढे प्रदेशों में जाकर प्राण दे रहे हैं। (तालियाँ) फिर बाकी क्या रहा? यह राज्य स्थिर रहे, यह राज्य नष्ट होकर जर्मनों का राज्य यहाँ कायम न होने पावे, इन सब बातों के लिये हम अपने विचारानुसार रुपये पैसे—यद्यपि हम अंग्रेजों के बराबर धनी नहीं हैं—देते हैं, हमारी शक्ति के अनुसार हमारे लड़के-बाले वहां जाकर अपने प्राणों को समर्पण करते हैं और इस प्रकार जो कुछ कर सकते हैं, कर रहे हैं। फ्रान्स, जर्मनी तथा अन्य राष्ट्र हमारी प्रशंसा कर रहे हैं। (तालियाँ) अंग्रेज गवर्नमेन्ट के प्रति हमारी कैसी निष्ठा है और उसकी हमें कितनी इच्छा है—इसका प्रमाण हम ने अपना रक्त बहाकर दिया है। (तालियाँ)

हम नहीं समझते कि कोई मनुष्य इस बात का इससे अधिक प्रमाण दे सकता है। अतः आज वह बात निस्संशय सिद्ध है कि हम यहां अंग्रेजी गवर्नमेण्ट का ही अधिपत्य चाहते हैं और इसके अनुसार हम प्रयत्न भी कर रहे हैं। जब ऐसी स्थिति है, तो ये बीच के लोग जो नियुक्त किये गये हैं, क्यों नहीं बरखास्त कर दिये जाते और वे अधिकार हमें क्यों नहीं दिये जाते, जो ब्रिटिश साम्राज्य के अन्यान्य देशवालों को प्राप्त हैं ? हम उनसे न बहादुरी में कम हैं और न विद्या में। हम में कर्तृत्त्व है । सब कुछ होने पर भी हमें अधिकार क्यों नहीं दिये जाते ? सम्राट् को अपनी काली और गोरी प्रजा में भेद क्यों करना चाहिये ? सम्राट् को ऐसी सलाह किसने दी है ? अंग्रेजी राजसत्ता की विशेषता यही है कि सम्राट् लोगों की सलाह से काम करते हैं । मन्त्रि-मण्डल को उन्हें ऐसी सलाह क्यों देनी चाहिये ? अस्तु; वर्त्तमान राजसत्ता जिसके हाथों में है अर्थात् जो अधिकारी-वर्ग है, वह गोरा है ; काला भी उनमें सम्मिलित होने पर वैसा ही हो जाता है। वर्त्तमान पद्धति के अनुसार यदि एक नेटिभ (देशी) विलायत से पास कर आवे और यहां उसकी नियुक्ति कलेक्टर के पद पर कर दी जाय, तो वह भी उनमें मिलते ही वैसा हो जाता है। आप यह न समझें कि मैं केवल गोरों के विषय में कह रहा हूँ। अतएव हमें यह पद्धति नहीं चाहिये। एक या दो आदमियों के उनमें जा मिलने से क्या बिगड़ सकता है ? उनके कार्यों में कोई विशे-षता नहीं हो सकती। अतएव यह पद्धति ही उठा देनी चाहिये। एक दो मनुष्यों की नियुक्ति से हमारा सन्तोष नहीं हो सकता।

तब इस पद्धति को किसने चलाया? महारानी (विक्टोरिया) का घोषणा-पत्र दूसरी ही तरह का है और वर्त्तमान शासनपद्धति बिलकुल उससे भिन्न है। इस समय हमारे पास कोई भी ऐसी शक्ति नहीं है, जिससे हम अपना कल्याण कर सकें। हमारी इच्छा हो कि हम अमुक विदेशी माल का महसूल बढ़ाकर स्वदेशी माल को उत्तेजना दें, तो यह हमारे वश की बात नहीं है। हम सोचें कि देश में अमुक उद्योग धन्दे की आवश्यकता है, उसे हमें आरम्भ करना चाहिये और उसकी शिक्षा के लिये बाहर से वेतनभुक्त शिक्षक बुलाने की व्यवस्था करनी चाहिये, तो यह बात भी हमारे हाथों में नहीं है। ये कितनी छोटी छोटी बातें हैं। लिखना-पढ़ना सीखना सब के लिये आवश्यक है। कोई मनुष्य चाहे मुसलमान हो, अन्य धर्म का हो या किसी जाति का हो, पर उसे थोड़ा बहुत लिखना-पढ़ना आना ही चाहिये। इस बात को आज संसार के सब लोगों ने माना है; इस विषय में अब कोई शंका नहीं रह गई है। लिखना-पढ़ना सीखने से मनुष्य का कुछ न कुछ लाभ अवश्य होता है। यह किसी को नई बात बताना नहीं है।

फिर हमारे यहां यह बात क्यों नहीं होती? इसी लिये कि द्रव्य का अभाव है। यह कारण किस की ओर से बताया जाता है? अधिकारीवर्ग की ओर से। क्योंकि उनकी तनख्वाह २५००) है उसे ३०००) करने के लिये रुपया चाहिये। Exchange Compensation की भी यही दशा है।

यह बात कुछ पहिले ही पहल हमारी निगाह में नहीं आई है; आज ५० वर्षों से यह बात हमें दिखाई दे रही है। सन् १८९६ में जब कलकत्ते में कांग्रेस हुई थी, उस समय दादा-

भाई नौरोजी (तालियाँ) ने यह बात स्पष्ट बतला दी थी कि मेरा ५० वर्षों का अनुभव सब को बतलाता है कि इस समय जो अवस्था है और जो एक प्रकार का अन्याय किया जा रहा है, उसका प्रतिकार करने का एक ही उपाय है और वह उपाय अधिकारों का लोगों के हाथों में आना है। उन्हों ने उसे Self-Government का नाम दिया। हमारे घरों में क्या किया जाना चाहिये, हमारे गांव में क्या किया जाना चाहिये, हमारे देश में क्या किया जाना चाहिये, तथा हमारे देहातों में क्या किया जाना चाहिये, आदि बातों की व्यवस्था हमें स्थित करनी चाहिये। हमारी स्थिर की हुई व्यवस्था थोड़े खर्च में होगी, उत्तम रूप में होगी और कहां ज्यादा खर्च करना चाहिये और कहाँ कमी करनी चाहिये, इस विषय में हम जो निर्णय करेंगे, वह यहाँ के लोगों के लिये अधिक हितकर होगा। अधिकारी कहते हैं, तुम बुद्धिमान् नहीं हो; जो कुछ समझता है, वह हमीं समझता है। अधिकारियों की दृष्टि सब से पहिले अपनी तनख्वाह हथियाने की ओर रहती है। खजाने में आमदनी पहुँची कि उनकी तनख्वाह की रकम पहिले निकलनी चाहिये। उनका सैनिक व्यय पहिले निकलना चाहिये। उनकी सब व्यवस्था पहिले होनी चाहिये। फिर जो कुछ आमदनी बचती है, वह शिक्षा तथा अन्य उपयोगी कामों में लगाई जाती है। वे यह नहीं कहते कि शिक्षा अप्रयोजनीय है। उनकी दृष्टि में शिक्षा कोई अनिष्ट वस्तु नहीं है। परन्तु सब खर्च निकाल लेने पर लोगों को शिक्षा देना सम्भव हो, तो उनके और सुभीते भी देखने का पीछे से विचार किया जाता है। हम प्रथम इस बात का विचार करेंगे कि हमारे हाथ में अधिकार आने पर हम यह व्यवस्था कर सकेंगे या नहीं।

यदि हम समझते हों कि ऐसे कार्य करने वालों को अधिक वेतन देना पड़ता है और इसमें कमी करनी चाहिये, तो हम उनसे कहेंगे कि यह काम आप को देश के लिये करना होगा। इन सब बातों का विचार जब इस रीति से होने लगेगा, उस समय हम जो कुछ करना चाहेंगे, उसका योग्य पारितोषिक हमें प्राप्त हो जायगा।

यह केवल विचार हुआ। आप की अड़चन कहाँ है? मराठी में (हिन्दी में भी) एक मामूली कहावत है कि किसी ने किसी से तीन प्रश्न किये—घोड़ा अड़ा क्यों; पान सड़ा क्यों और रोटी जली क्यों? इन तीन प्रश्नों का उसने एक ही उत्तर दिया और वह यह कि "फेरा नहीं"। इसी प्रकार हमारे देश में शराब की खपत कम क्यों नहीं होती, जंगल में लोगों पर अत्याचार क्यों होता है, शिक्षा के लिये द्रव्य क्यों नहीं मिलता है, इन सब प्रश्नों का भी एक ही उत्तर है, अर्थात् आप के हाथों में अधिकार नहीं है (तालियां) और ये अधिकार जब तक आप के हाथों में न आवेंगे, तब तक आप का भाग्योदय भी न होगा। सम्राट् चाहे कोई हो इसके विषय में हमारा कुछ कहना नहीं है; पर जिन बातों का सम्बन्ध व्यवहार, व्यापार, धर्म्म और समाज से है, उन्हें हमें अवश्य करना है। इन बातों के करने की सत्ता थोड़ी बहुत हमारे हाथों में आये बिना—शर्त यह है कि अन्त में पूरी पूरी आनी चाहिये—पूर्ण रूप से हमारी अधीनता में आये बिना—हमें अपने लिये समृद्धि, भाग्योदय, लाभ या उत्कर्ष के दिन देखना असम्भव है। औरों के मुँह से पानी नहीं पीया जा सकता; उसे अपने ही मुँह से पीना पड़ेगा।

आप से कोई नहीं कहता कि ये स्वत्व आप तलवार के

बल पर प्राप्त करें ! पर आज राष्ट्र की दृष्टि बदली हुई है। भारत इंग्लैंड की कुछ सहायता कर सकता है। भारत सुखी रहेगा, तो इससे इंग्लैंड को ही एक प्रकार का वैभव और गौरव मिलेगा। इस तरह की बुद्धि इंग्लैंड में जाग्रत हुई है। इस बुद्धि का इस समय लाभ न उठाया गया, तो फिर ऐसा अवसर नहीं आवेगा।

अधिकारीवर्ग इसे बुरा समझता है। इसमें किसका नुकसान है? नुकसान सम्राट् का नहीं; किन्तु अधिकारी-वर्ग का है। इसी से उन्हें यह बात बुरी लगती है। और वे इस समय यह उपदेश करते हैं कि हम यहाँ इस लिये आये हुए हैं कि तुम लोग स्वराज्य के अयोग्य हो मानों उनके आने के पहिले भारत में कहीं स्वरांज्य था ही नहीं और हम सब लोग लुटेरे या एक दूसरों का गला काटने को तैयार रहते थे। पेशवाई (शासन) में राज्य-व्यवस्था का अभाव था; मुसलमानी में भी राज्य-व्यवस्था नहीं थी। हम लोग राज्य-प्रबन्ध की योग्यता न रखते थे। हमें सड़कें बनवाना न आता था और लोग सुखी किस प्रकार रह सकते थे, यह हम नहीं जानते थे। नाना फड़नवीस मूर्ख थे; मलिक अंबर मूर्ख थे; अकबर और औरङ्गजेब भी मूर्ख थे। अतएव इन्हें केवल हमारे कल्याण के लिये यहां आना पड़ा और हम अद्यापि अपक्वबुद्धि बालक हैं।

अच्छा हम घड़ी भर के लिये इसे भी मान लेते हैं कि हम लोग अभी बालक ही हैं। परन्तु अब बालिग कब होंगे? कानून में २१ वर्ष का होने पर बालिग समझा जाता है। इन्हों ने ५० वर्षों तक हम पर शासन किया, तो भी हम बालिग न हो सके तो इन्हों ने ५० वर्षों में यहां आकर कौनसा कार्य

किया? हिन्दुस्थान के लोग नाबालिग थे, तो उन्हें सयाना करना किसका कर्त्तव्य था? यह कर्त्तव्य इन्हीं का था; यही राज्यकर्त्ता थे। मेरा तो यह कहना है कि इन्हीं ने यह कर्त्तव्य पालन नहीं किया। अतएव हम बालक तो हैं ही, किन्तु ये भी राज्य करने के अयोग्य हैं। (तालियां) जो लोग ५० वर्षों में अपनी प्रजा का सुधार न कर सके, वे अपने अधिकार दूसरों को सौंप दें, यही अच्छा है।

जो लोग हम से कहा करते हैं कि तुम अभी योग्य नहीं हुए तो उनका केवल कहना स्वार्थ साधन के लिये है। यह कथन यदि सत्य हो, तो इससे एक तरह पर उन्हीं की बेइज़्ज़ती है; वे अयोग्य सिद्ध होते हैं। और यदि असत्य है, तो स्वार्थ साधन के लिये है। इसके सिवाय हम इससे और कोई परिणाम नहीं निकाल सकते। 'हम अयोग्य हैं' इसका क्या अर्थ है? हमें क्या हुआ है? हम म्युनिसिपालिटी का प्रबन्ध कर लेते हैं। कोई विलायत से परीक्षा पास कर आता है, उसे कलेक्टर का पद सौंपा जाता है, तो वह उस पद का काम कर लेता है। गवर्नमेंट उसकी सिफारिश करती है। परन्तु लोगों को स्वराज्य के अधिकार देने के समय सब लोगों को–करोड़ों को–साफ नालायक कह देना और अयोग्यता के सार्टिफिकेट दे डालना स्वयं अपनी ही अयोग्यता प्रदर्शित करना है। (तालियाँ)

इसके अतिरिक्त और भी अनेक प्रकार के आक्षेप स्वराज्य पर किये जाते हैं। पहिली बात मैं कह ही चुका हूँ कि वे (अधिकारी) एक बारगी समस्त राष्ट्र को अयोग्य बतलाते हैं। परीक्षा लेने को कहा जाय, तो वह भी नहीं ली जाती। अयोग्य, अयोग्य—इसका क्या अर्थ है? अपने और हमारे

दोनों आदमियों को काम पर लगा दीजिये। फिर देखिये कि वह (हमारा आदमी) ठीक काम करता है या नहीं। काम करने का अवसर नहीं दिया जाता और योंही (हमें) अयोग्य कह दिया जाता है। जिन्हें यह अवसर दिया गया है, क्या वे अयोग्य सिद्ध हुए हैं? व्यवस्थापिका सभाओं के जो लोग मेम्बर हैं, वे क्या अयोग्य हैं? क्या वे कभी अयोग्य कहे गये हैं? क्या तुम ने कभी उन्हें अयोग्य कहा है? नहीं। फिर अयोग्य का क्या अर्थ है? तुम देना नहीं चाहते। छाँछ न देने के लिये क्या किसी हीले की जरूरत है? आज रविवार है, आज छाँछ नहीं देंगे; इस समय ऐसी टालमटोल से काम निकाला जा रहा है। मुझे यह जानना है कि आप यह टालमटोल न चलने देते हुए कमर कस कर मांगने को तैयार हैं या नहीं। यदि आप मांगने को तैयार न हुए, यदि आप ने इसके लिये आग्रह न किया और आज का मौका मुफ्त में खो दिया, तो ऐसा मौका फिर १०० वर्षों तक आने वाला नहीं है। अतएव आप को तैयार होजाना चाहिये। मैं जानता हूँ कि यदि हम तैयार हो कर बल पूर्वक कहना आरम्भ करें, तो यह असम्भव नहीं है कि कोई पुलिस का सिपाही हमें 'तू' कह कर सम्बोधित करे। परन्तु इसे सहना ही चाहिये। इसका कोई इलाज नहीं। सत्ता हमारे हाथ में नहीं। तू मूर्ख है, जा अपना काम देख—यह बात हम उस पुलिस सिपाही को नहीं कह सकते। वह पुलिस इन्स्पेक्टर की आज्ञा मानता है। परन्तु मैं आप लोगों से यह कह सकता हूँ कि यदि आप सब धर्म और जातिवाले निश्चय तथा एकता के साथ एक हो कर गवर्नमेन्ट से इसी समय इसके लिये माँग करें, आग्रह करें, इसके लिये जिस खर्च की

आवश्यकता हो, उसे करने को तैयार रहें और यह बात गवर्नमेंट पर ही नहीं, परन्तु सारे संसार पर प्रकट कर दें कि यह माँग पूरी किये बिना हम तृप्त न होंगे—हमें सन्तोष न होगा—यदि इतनी दृढ़ता आप में हो, तो मुझे विश्वास है कि परमेश्वर की कृपा से यह माँग शीघ्र ही पूरी होगी।

यह आप के निश्चय का ही फल होगा। क्या धर्म और क्या राजनीति सभी में निश्चय की आवश्यकता है। परन्तु साहस के बिना मन में ऐसा निश्चय नहीं होता। 'जो हो' कहने से काम नहीं चलेगा। उसके अच्छे या बुरे होने से ही हमारा प्रयोजन है। हम इसी की माँग करेंगे। हम इसके लिये द्रव्य एकत्र करेंगे और जो खर्च या परिश्रम आवश्यक होगा करेंगे और जब तक हमारी यह माँग पूरी न कर दी जायगी, तब तक यह आन्दोलन बन्द न करेंगे। यदि हमारे जीवन-काल में यह काम पूरा न हुआ, तो हमारे लड़के-बाले भी इस आन्दोलन को जारी रखेंगे। जब इस काय में इस प्रकार की आसक्ति होगी, तभी इसका फल प्राप्त होगा। भक्ति के बिना परमेश्वर से फल नहीं मिलता, राजा से नहीं मिलता, इस लोक में तथा परलोक में नहीं मिलता। यदि आप का ऐसा विश्वास न हुआ, तो दृढ़ प्रयत्न करने पर भी उससे किसी फल की प्राप्ति न होगी। विश्वास प्रथम आवश्यक है। धनवान् और गरीब दोनों में विश्वास होना चाहिये। गरीब को अपनी तरह पर सहायता करनी चाहिये और अमीर को अपनी तरह पर। जो बुद्धि वाले हैं, उन्हें बुद्धि से सहायता करनी चाहिये। प्रत्येक मनुष्य के हृदय में यह बात लगी रहनी चाहिये। यदि यह हर समय आप के मन से नहीं लगी रहेगी, यदि आप उद्योग करने के लिये

तैयार नहीं होंगे, तो अपयश का बोझ लोगों के सिर लादना निरी मूर्खता होगी। कदाचित् मूर्खता शब्द आप को बुरा लगा होगा। पर मैं इसे आवेश में कह गया। परन्तु मेरा दृढ़ विश्वास है कि हम ने आज भी उतनी दृढ़ता, उतनी आस्था और उतनी निष्ठा से प्रयत्न करना आरम्भ नहीं किया है, जितना कि चाहिये था।

यदि कोई साहब (युरोपियन) हम से पूछे कि तुम्हें अधिकार देने से क्या अव्यवस्था नहीं होगी? तो हम कहते हैं—हाँ, हमारे पास मनुष्यों का अभाव है। तैयार किये हुए मनुष्य नहीं हैं! और फिर हम घर में साहब पर हँसते हैं। हँसना नहीं चाहिये (तालियाँ-हँसी) घर में हँसने से काम न चलेगा, मुँह पर जवाब देना चाहिये। हमें जो बात सच जान पड़े, उस बात का प्रतिपादन करने के लिये लोगों, अधिकारियों बल्कि सम्राट् तक के सामने कहने को तैयार रहना चाहिये। जिस दिन आप इसके लिये तैयार हो जायँगे, उस दिन—विशेषतः इस युद्ध के समाप्त होने पर—राज्य व्यवस्था में कुछ परिवर्त्तन करना ही पड़ेगा। यदि आज जैसी राज्य-प्रणाली है, वैसी ही रही तो इंगलैंड युरोपियन राष्ट्रों में कोई अधिकार न पा सकेगा। इङ्गलैण्ड इस समय सब से बलवान् है। गवर्नमेंट सर्वोपरि शक्तिशालिनी है। परन्तु उसे उसी रूप में स्थिर रखने के लिये वर्त्तमान राज्यव्यवस्था में कुछ न कुछ फेरफार अवश्य होना चाहिये। वस्तुतः यह वही कहते हैं कि परिवर्त्तन किया जाय; भारत नहीं कहता कि परिवर्त्तन किया जाय। इसमें कोई न कोई दोष है। आज मैं खड़ा हूँ; कल दूसरा खड़ा होगा और कहेगा कि इसमें तुम्हारा कल्याण नहीं है, इस समय जो व्यवस्था है,

वही उत्तम है। गवर्नमेन्ट दयालु है। अधिकारीवर्ग बुद्धिमान है। अतः उसी की इच्छा से चलना अच्छा होगा......
......पर व्यापारीवर्ग का यह मत नहीं है। बुद्धिमान मनुष्यों का यह मत नहीं है। मुसलमान आदि किसी धर्म का यह मत नहीं है। मुझे जो बात करनी है, वह मुसलमानों के लिये, हिन्दुओं के लिये या व्यापारियों के लिये ही नहीं होगी। सब के लिये होगी। सब के लिये एक ही औषधि है। यह औषधि सत्ता है। उसे अपने अधिकार में लीजिये। वह आप के अधिकार में आ जाने पर हमारे आपके जो झगड़े होंगे, उन्हें हम आप निपट लेंगे। सत्ता को अपने अधिकार में कर लेने पर ये झगड़े निपटाने के लिये आप के पास बहुत समय रहेगा। यदि धर्म सम्बन्धी विश्वास में मतभेद होगा तो भी हम उसे मिटा लेंगे। इसलिये हमें सत्ता की आवश्यकता है। जो कुछ हमें अपने देश के लिये करना है, उसे जितना हम जानते हैं, उतना बाहरी कदापि नहीं जानते। उनकी दृष्टि भिन्न होती है। अतएव अंग्रेजी गवर्नमेंट का शासन स्थिर रहेगा और वही अंग्रेजी सम्राट् जिस प्रकार वह साम्राज्य पर राज्य करता है, उसी प्रकार भारत पर भी करेगा। परन्तु और और उपनिवेशों में जैसी व्यवस्था है, वैसी ही यहाँ भी होनी चाहिये। उपनिवेशों में सत्ता, स्वामित्व, नियम-रचना का अधिकार सब कुछ उन्हीं (उपनिवेश वालों) के हाथ में है। इससे सम्राट् की कोई हानि नहीं होती। यह अंगरेजी राज्य के दूर करने का नहीं; किन्तु लोगों के लिये उसे अधिक समाधानकारक बनाने का प्रयत्न है। इससे कुछ लोगों की रोटियाँ छिन जायँगी, इससे इनकार नहीं हो सकता। तथापि केवल इन्हीं लोगों के लिये

सम्राट् ने भारत को अपने अधीन रख छोड़ा है, ऐसा हम नहीं समझते। ऐसा प्रबन्ध कुछ कारणों से हुआ होगा। वह दूर हो जाना चाहिये। सम्राट् को लोगों के हाथ में अधिकार दे देना चाहिये और भारतीय, ब्रिटिश-गोरी और काली प्रजा में किसी प्रकार का भेद न रखना चाहिये। सम्राट् की जैसी प्रजा वह है; वैसी ही हम भी हैं। उन्हें जितने सुख हैं, उतने ही हमें भी मिलने चाहियें। अनेक बुद्धिमान्, विद्वान् और विचारशील मनुष्यों ने जिस वस्तु को इन सब का कुंजी बतलाया है, वह 'स्वराज्य' है। उसका समय अब आ गया है। उस (स्वराज्य) का अर्थ मैं आप को पहिले ही समझा चुका हूँ। उसका समय आ गया, यह भी तो मैं आप को बतला चुका हूँ। हाँ, सभी बातें मौजूद हैं तथापि अन्तिम वस्तु आप का दृढ़ निश्चय है। जिस व्यवस्था के विषय में मैं कह रहा हूँ, वह होने वाली होगी तो भी आप उसे प्राप्त न कर सकेंगे। इसलिये आप का निश्चय आवश्यक है। उसकी प्राप्ति के सम्बन्ध में दैवयोग से एक प्रकार का आन्दोलन इस समय आरम्भ हो गया है। हाल ही में मैं ने स्वराज्य के सम्बन्ध में उद्योग करने के लिये बेलगांव में एक संघ स्थापित किया है। कांग्रेस के सामने तो यह विषय पहिले ही से है और इसकी कुछ न कुछ व्यवस्था भी अब अवश्य ही वह करेगी। तथापि कई एक प्रान्तों ने अपनी व्यवस्था कर ली और उसे सहायता दी। कम से कम इतना धैर्य अवश्य होना चाहिये कि यदि कोई, जैसे—कलेक्टर, कमिश्नर आदि पूछें, तुम्हें क्या चाहिये, तो कहना होगा कि 'हमें सत्ता चाहिये; सत्ता हमारे हाथों में होनी चाहिये। सरकारी नौकर लोगों के नौकर समझे जाने चाहियें।' आप यह न सोचें कि आगे हमारे

हाथों में सत्ता आने पर हम युरोपियनों को नौकरियाँ न देंगे। यदि वे अच्छा काम करेंगे, तो हम उन्हें नौकरियाँ देंगे और जो (वेतन) उचित समझेंगे देंगे। परन्तु उन्हीं को हमारा नौकर होना होगा; उनके नौकर हम न होंगे। इस प्रकार की अभिलाषा मन में रखकर यदि आप उद्योग करेंगे, तो यह बात साध्य होने योग्य है। इसके लिये जिसे मदद की जरूरत हो कीजिये; इसे कहने के लिये जो लोग आप के पास आवें, उन्हें जिस प्रकार की सहायता की आवश्यकता हो, उसे करने को आप तैयार रहें। भिन्न भिन्न स्थानों के लोग, केवल पूना, बम्बई और नगर के ही नहीं,—मद्रास, बंगाल आदि के भी—सब स्थानों के लोग तैयार होंगे, तो यह बात शीघ्र साध्य है। इसकी सिद्धि के लिये—शीघ्र सिद्धि के लिये—इसके उद्योग में लग जाइये। इतना आप से निवेदन कर और उसी तरह शीघ्र ही उस समय के आने की आशा रखकर कि जिस में भारत के लिये कोई न कोई फल प्रत्यक्ष दिखाई पड़ेगा, इस व्याख्यान को समाप्त करता हूँ। इस में मुझ से जो कुछ प्रमाद हुआ हो, या आप लोगों के विषय में जो कुछ अनुचित कहा गया हो, उसके लिये आप से क्षमा माँगता हूँ। आप लोगों का मैं अत्यन्त आभारी हूँ (तालियाँ)।

तीसरा व्याख्यान।

(अहमदनगर के पुराना कपड़े के बाजार में ता० १–६–१६ को दिया हुआ व्याख्यान)

साधारणतः मेरा यह मत है कि हमें जो कुछ सुधार चाहिये, वे स्वराज्य के सुधार हैं। आप को वह कथा मालूम होगी कि जिस में एक बुढ़िया ने यह वरदान माँगा था कि मैं अपने जीते जी अपने नाती, पोतों को सोने की थाली में खाते

देखूँ। इस वरदान में उसने अपने दीर्घ-जीवन की प्रार्थना की। साथ ही लड़का होने की इच्छा प्रदर्शित की, धनवान् होने की भी प्रार्थना की और अन्त में नाती, पोतों के देखने की अभिलाषा भी प्रकट की। इस छोटे से वरदान में उसने सब बातें इकट्ठी माँग ली। ठीक वैसी ही बात स्वराज्य की है।

यदि स्वराज्य नहीं मिलेगा, तो औद्योगिक उन्नति नहीं होगी, किसी तरह की प्राथमिक शिक्षा, उच्च शिक्षा, राष्ट्रीय शिक्षा आदि किसी बात का मिलना सम्भव नहीं है। स्वराज्य यदि नहीं मिलेगा, तो केवल स्त्री-शिक्षा बढ़ाने ही से काम न चलेगा, औद्योगिक सुधारों से भी कुछ न होगा, न सामाजिक सुधार कुछ कर सकेंगे। ये सब स्वराज्य के अंग हैं। पहिले अधिकार चाहिये। जहाँ अधिकार होंगे, वहीं बुद्धि भी होगी। बुद्धिमानी अधिकार से अलग नहीं रह सकती; यदि रहे भी तो वह किसी काम की नहीं है। किसी देश में इस विषय को इतने विशद रूप से समझाने की आवश्यकता नहीं पड़ती, पर हमारे देश में इसकी विशेष आवश्यकता है। इसका कारण यही है कि हम स्वराज्य-भोगी नहीं हैं। कुछ लोग हमारे इन कार्यों पर यह आक्षेप करते हैं कि आप सामाजिक सुधारों की ओर क्यों ध्यान नहीं देते? यह हम लोगों का कथन नहीं है; यह दूसरों का कटाक्ष है, जो एक सीधे मार्ग पर चलने वाली गाड़ी को घुमाकर दूसरे निराले मार्ग पर ही ले जाया चाहते हैं। ऐसी अनेक जातियाँ हैं, जो समाज-सुधार में बहुत आगे बढ़ी हुई हैं। ब्रह्मदेश में समाज-सुधार बहुत हुआ है। वहाँ का धर्म एक ही है। वहाँ उन्हें जो बात बतलाइये वे करने के लिये तैयार रहते हैं। उनके लड़के जिससे चाहते हैं, उससे विवाह करते हैं। पर राष्ट्रीयत्व की भावना

किसी बात में भी नहीं दिखाई देती। वह देश पूर्णतया परतन्त्रता की बेड़ियों से जकड़ा हुआ है। अब क्या चाहिये? हम एक राष्ट्र हैं। हमें इस संसार में कुछ न कुछ करना है। मनुष्य के जो अधिकार प्रकृति सिद्ध हैं, वे हमें चाहिये—स्वतन्त्रता हमें चाहिये। अपने कारोबार देखने के हक़ हमें चाहिये। ये सुधार यदि हमें न मिलेंगे, तो हमारी एक आशा भी सफलीभूत न होगी। यही सब सुधारों की जड़ है।

मैं यह नहीं कहता कि स्त्री-शिक्षा हमें नहीं चाहिये; किन्तु जब इधर का आन्दोलन बन्द करने के लिये उधर घूमने को कहा जाता है, तब हम कहेंगे कि राष्ट्र को मुर्दा बनाने का यह उपाय है। हम में यदि शक्ति नहीं है—किसी बात को प्राप्त करने की हिम्मत नहीं है, तो पढ़ी-लिखी स्त्री से जो संतान उत्पन्न होगी—वही हमारे पुत्र, हमारे उद्धार का प्रयत्न करेंगे ऐसा कहना निरी मूर्खता है। (हँसी) तुम्हें अपने पैरों के बल खड़ा होना चाहिए। तुम्हें इन बातों को करना चाहिये और उनमें से मुख्य बात को पहिले करना चाहिये। जिन्हों ने आज ५० वर्ष तक प्रयत्न किये हैं, उनका यह अनुभव है कि स्वराज्य इन सब प्रतिबंधक फाटकों की कुंजी है। यह यदि तुम्हारे हाथ लग जाय तो फुटकर सुधार सहज ही में हो सकते हैं। तुम्हें यदि स्त्री-शिक्षा आदि सुधार करने हों, तो करो, मेरा कहना कुछ भी नहीं है; पर वे सब बातें इसकी (स्वराज्य की) पोषक हैं। इसी बात को लक्ष्य कर मैं ने कल जो कहा था, उसी विषय पर मैं आज भी कुछ कहूँगा।

स्वराज्य का अर्थ अंग्रेज़ों को यहाँ से निकाल देना नहीं है—बादशाह कोई हो, उससे हमें कुछ मतलब नहीं है। हमारे हक़ हमें मिल जायँ, बस यही हम चाहते हैं। फिर चाहे

वे किसी बादशाह के दिये क्यों न हों। इंग्लैण्ड में राजा है, पर वहाँ अंग्रेज़ों को अधिकार हैं या नहीं? इंग्लैण्ड का राजा ही हमारा बादशाह है। यदि इंग्लैण्ड में उसका राजत्व कायम रह कर अंग्रेजों को स्वतंत्रता के हक मिलते हैं, तब भारत में उसी बादशाह...............। ब्रिटिश नागरिकत्व के हक हम लोगों को देने में कौन सी अँड़चन है? किसी प्रकार की अँड़चन न होनी चाहिये। यह जो अनर्गल बात फैलाई गई है कि होमरूल—स्वराज्य का आन्दोलन राजद्रोही है और उसे राजद्रोह समझ अभी हाल ही में मिसेज बीसेन्ट से दो हजार की जमानत ली गई है, वह निरर्थक है। यह आक्षेप बादशाह का नहीं है, प्रजा का नहीं है, किन्तु ये बीच वाले जो दलाल हैं, उनका है। (हँसी) हमारा कहना बस यही है कि यह राज्य-व्यवस्था बदलनी चाहिये। राजा न बदलना चाहिये। जिस पद्धति से, जिस व्यवस्था से इस समय शासन हो रहा है, उसके न बदलने से, उसमें आवश्यक परिवर्त्तन न करने से हिन्दुस्थानी अधिक नामर्द और शूरत्व हीन हो जायँगे। कुछ लोगों का कहना है कि...............
'खाने को तो मिलता है—वे किसी को मारते नहीं; पशु, पक्षी तक आराम से खाते पीते हैं।' पेटभर खाने को मिलना कुछ पुरुषार्थ नहीं है। अपने परिवार का पोषण करना पुरुषार्थ नहीं है। "काकोपि जीवति चिराय बलिं च भुंक्ते" कौवा भी अपना निर्वाह करता ही है। कौवों को खेत तैयार नहीं करने पड़ते। उन्हें प्रति दिन पका पकाया भात मिल जाता है। उदर-निर्वाह कर राज्य नियमों की मर्यादा में उन्हों ने जो मार्ग खुले रक्खे हों, उन्हीं मार्गों का अवलम्बन कर हुकम मानने और उन्हीं के कथनानुसार उदर-निर्वाह करने में मैं

पुरुषार्थ नहीं समझता। पशु-धर्म में और इसमें भेद नहीं है। मनुष्य में यदि मनुष्यत्व चाहता हो, तो हमारी बुद्धि, हमारी कुशलता और हमारी हिम्मत आदि के लिये कुछ प्रदेश साफ रहना चाहिये। हिन्दुस्थान के लिये वैसा खुला प्रदेश नहीं है। अतएव यदि तुम्हारा कुछ कर्त्तव्य है, तो वह यही है कि इस अधिकार का कुछ अंश अपने हाथों में लो। थोड़ा ही अंश क्यों न हो। नगर जिला परिषद के अध्यक्ष श्रीयुत केलकर का यह कहना बहुत ठीक था कि थोड़े ही में हम स्वतन्त्र रहें। हमारा धन हमें खर्च करने का, हम जो कर देते हैं उनको उचित रीति से व्यय करने आदि बातों का विचार हम अपनी बुद्धि से करें। यदि आपस के दस, पांच बड़े लोगों की सलाह न लेंगे और इस तरह की आशायें न करेंगे, तो सृष्टि के नियमानुसार-मनुष्यों में जो इस प्रकार के कार्य करने की बुद्धि रहती है, वह हम में से कम हो जायगी और इस प्रमाण से पशुओं की कोटि में हम अधिकाधिक मिलते जायँगे।

स्वराज्य क्या वस्तु है और उससे क्या होगा? स्वराज्य का मतलब यह नहीं कि अंग्रेज कलेक्टर बदल कर उसकी जगह हिन्दुस्थानी रक्खा जाय। वे अंग्रेज रहें तो भी हमें अधिकार चाहिये। अमुक मनुष्य को बदल कर अमुक मनुष्य को रखिये, ऐसा कहने में कोई आपत्ति नहीं है। शायद गोरा मनुष्य तनख्वाह देने पर हमारा भी नौकर रहे और अच्छा हो तो हम उसे रखेंगे भी; पर यह व्यक्तिगत वाद नहीं, किन्तु राष्ट्र का वाद है। मुख्य प्रश्न यह है कि अमुक राष्ट्र को पशु की तरह चलाना चाहिये या उस राष्ट्र में मनुष्य हैं, यह समझ कर उसकी मनोवृत्तियों और स्वतन्त्र बुद्धियों को कुछ

उत्तम मार्ग बतला कर उसे सुधरे हुए राष्ट्रों की पंक्ति में लाकर बैठाना चाहिये। इस दृष्टि से विचार करने से तो सिवाय स्वराज्य के अधिकार प्राप्ति के बिना कोई दूसरा मार्ग नहीं है। वह सत्ता—वह अधिकार जब एक बार हम लोग पा जायँगे—तब हम हजारों बातें कर सकेंगे। पूने में बड़ा भारी प्रयत्न इस लिये किया गया कि अमुक जगह से शराब की दूकान—सरकार को भले ही उस से हजार, दो हजार मिलते हों—उठ जाय, पर उसे उठाने का हम लोगों को अधिकार नहीं है। अमुक जगह शराब की दूकान रहनी चाहिये या न रहनी चाहिये, इसके लिये इतने बड़े पत्र-व्यवहार की क्या आवश्यकता है? इस महान् प्रयत्न के लिये जितने कागज खर्च हुए हैं, उतना शायद दूकान का मुनाफा भी न होगा।

अधिकार हमारे हाथों में आवे, तब जाकर हमारे वंश परंपरागत गुणों का उत्कर्ष हो सकता है। उन गुणों का हम जिस तरह चाहे उपयोग करने में स्वतन्त्र रहेंगे। यही स्वराज्य का अर्थ है और दूसरा कोई नहीं। थोड़ा ही क्यों न हो, पर वह दुखदाई नहीं होता। व्यक्ति की अपेक्षा समुदाय अथवा समाज का लाभ करने का जो कर्त्तव्य है, उसे करें; भूले नहीं। एक समय वह था जब महाराष्ट्र देश में ऐसे नररत्न थे, जिन में उनके उद्देश्य की जाग्रति सदा बनी रहती थी। पर दुर्भाग्यवश वह मनुष्य स्वभाव लुप्त हो गया। हमारा काम यदि कोई दूसरा करता है, तो हम कहते हैं कि चलो ठीक हुआ। काम होने से मतलब, भला बुरा पहिचानने की बुद्धि अभी हम लोगों में नष्ट नहीं हुई है।

यह एक परतन्त्र और एक स्वतन्त्र तोते की बात-चीत है। जिसमें स्वतन्त्र तोता परतन्त्र तोते से कहता है कि बाहर मैदान में बड़ा आनन्द है। जहां चाहे वहां घूमने को मिलता

है। जब चाहे तब भोजन मिलता है। यह आनन्द तुम्हें कहाँ? परतन्त्र तोते ने जवाब दिया कि भाई तुम जो कहते हो, वह सब ठीक है। पर यह सोने का अड्डा जिस पर कि मैं बैठा हूँ, वह मुझे बाहर कहां मिलेगा! हम लोगों की ठीक वैसी ही स्थिति है। स्वराज्य मिलने पर उसे कैसे चलावेंगे? न कोई देता है न लेता है और तुम यह चिन्ता कर रहे हो कि स्वराज्य मिलने पर उसे किस तरह चलावेंगे? वह बंद तोता बाहर जायगा, तो उसे वह पिंजरा कहाँ मिलेगा? सोने का अड्डा कहाँ मिलेगा? वैसी ही हम लोगों की भी स्थिति हुई है और यह अवस्था स्वाभाविक नहीं, कृत्रिम है। पिंजरे में बंद रहने के कारण उस तोते में जैसी भावना उत्पन्न हुई, उसी तरह अधिकार हीन होने से हम लोगों में भी वैसी ही भावना उत्पन्न हुई है। यह हमारी असल स्वाभाविक—मनुष्य की स्वाभाविक—भावना नहीं है। जिस तरह तोते की वह भावना स्वाभाविक नहीं थी, उसी प्रकार हमारा यह राष्ट्रीय भावना भी स्वाभाविक नहीं है।

जो काम आ पड़ता था, उसे करने के लिये जो लोग सदा तैयार रहते थे, उन्हीं के वंशज हम लोग भी हैं और यदि हम उनकी सच्ची संतान हैं, तो वैसा मौका मिलने पर उनके गुण हम में प्रगट होने चाहिये, और होंगे यही विश्वास कर हमें उद्योग करना चाहिये। यही मेरा कहना है। अनुवंशिक संस्कारों का यदि कुछ मूल्य है, तो उसे दीजिये। नहीं तो यह कहना छोड़ दीजिये कि ये फलाने के लड़के, फलाने के नाती हैं। इस समय हम लोगों में बहुत से सरदार हैं। वे कहते हैं कि हमारे नाना सरदार थे, हमारे परदादा सरदार थे। उनमें उनके पूर्वजों के रक्त के गुण विद्यमान हैं। पर उन्हें जो जागीरें मिली हैं, उन्हें बचाने के लिये वे साहबों की (!) जिस तरह हो सके सेवा

करते हैं। अच्छा इनको तो जाने दीजिये। पर हम तुम जिन्हें कुछ भी नहीं मिलता, वे भला क्यों उनके फन्दे में फँसते हैं?

राष्ट्र पर जो इस तरह की एक घटा फैली हुई है, उसे हमें दूर करना है। यह ग्रहण है। जब चन्द्र-ग्रहण होता है, तब लोग दान करते हैं। परन्तु तुम्हें जो ग्रहण लगा हुआ है, उसे छुड़ाने के लिये तुम एक पैसा भी खर्च करने के लिये तैयार नहीं हो। इतना ही नहीं; बल्कि उसको हटाने के लिये तुम जरा इधर-उधर हिलना भी नहीं चाहते हो। पहिले चन्द्र-ग्रहण आदि में ब्राह्मण जप-तप किया करते थे। अब वे ग्रहण के लिये कौनसा जप कर रहे हैं? तुम कौनसा प्रयत्न कर रहे हो? इसके लिये क्या तुम किसी को एक पैसा भी देने के लिये तैयार हो? नहीं, बिलकुल नहीं।

तुम सदा यह कहने के लिये तैयार रहो कि अमुक वस्तु हमारी है और वह हमें चाहिये। जब तक तुम दृढ़ निश्चय नहीं कर लोगे, तब तक कुछ नहीं हो सकता। यदि कोई पुलीस अफसर पूछता है कि "क्यों तुम तिलक या मिसेज़ एनी बेसेन्ट का व्याख्यान सुनने गये थे?" तो उत्तर देते हो कि "हाँ, खतम होते होते गया था। दूर बैठा था। मैं अच्छी तरह सुन भी न सका।" (हँसी) नहीं भी कैसे कहा जा सकता है। क्योंकि पुलीस की नजर सबों पर होती है। ऐसा डर तुम लोगों के हृदय में क्यों समाया है? 'हमें स्वराज्य चाहिये' यह कहने में डर क्या है?

जो कुछ अँड़चन की जगह है, वह यही है। श्रोता से यदि पूछा जाता है, तो पीछे से ठीक कह देता है। पर पुलीस के पूछने पर कहता है कि "मैं ने अच्छी तरह नहीं सुना। दो चार आदमी वैसा कह रहे थे। मेरा वैसा मत नहीं है।"

इस कार्य में डरपोक बनने से काम नहीं चलेगा। डरपोक

होने से कोई देवता प्रसन्न नहीं होते। देवता जानते रहते हैं कि तुम्हारे चित्त में क्या है? और ये जो सब इस तरह के देवता हैं, उनमें स्वतंत्रता देवी का इस विषय पर बड़ा कटाक्ष है। तुम्हें जो चाहिये, स्पष्ट शब्दों में मांगो और वे देंगे। शायद एक दो बार इनकार कर जायँ। पर कितनी बार नाहीं करेंगे? यह निश्चय समझ रक्खो कि यह मामूली काम नहीं है। हर एक देवता, जब तक तुम में कुछ सामर्थ्य नहीं होता, डर दिखलाने का प्रयत्न करते हैं। हमारे योग-शास्त्रों में भी देवता साधन का आदेश है। वे साधक को डर दिखलाते हैं, पर साधक को दृढ़ निश्चय के साथ अभ्यास करते रहना चाहिये। योग-शास्त्र का यह प्रमेय है कि डर की कुछ भी परवाह न कर दृढ़ निश्चय के साथ अपना कार्य करते रहने से देवता प्रसन्न होते हैं। यही न्याय भी है। राजकीय विषयों में भी यही बात है और दूसरा कोई मार्ग नहीं है। 'हमें वही चाहिये, बस (स्वराज्य को) प्राप्त करेंगे और उसे प्राप्त किये बिना अपना प्रयत्न नहीं छोड़ेंगे।' जब तक ऐसी दृढ़ भावना तुम में नहीं होगी, तब तक यह बात हो नहीं सकती। डर हमेशा पीछे लगा रहेगा। पुलीस पीछे पड़ जायगी। खुफिया पुलीस पीछा करेगी। पर अन्त में कार्य सिद्धि अवश्य होगी। इन लोगों की घुड़कियों से मत डरो; किन्तु यह समझो कि यह इसी का निश्चित परिणाम है। अंग्रेजी में एक मसल मशहूर है कि 'अँधेरे से निकले बिना उँजियाला कैसे दिखाई दे?' सूर्य को सबेरे उगने के लिये अन्धेरे में से जाना पड़ता है। यह साधारण लोगों के समझ की बात है। शास्त्र इसे नहीं मानता। जैसे अँधेरे से बिना गुजरे उँजियाला नहीं दिखाई देगा, उसी तरह इन झंझटों, यन्त्रणाओं और लोगों की घुड़कियों को बिना पार किये स्वतन्त्रता की प्राप्ति नहीं

होगी। दृढ़ निश्चय की बहुत आवश्यकता है। स्वराज्य की व्यापकता मैं ने आप को बतलाई है। अतः उसके लिये प्रयत्न भी उतने ही जोरों के साथ होना चाहिये। ईश्वर की कृपा से आज पृथ्वी में परिवर्त्तन हो रहे हैं। भाविक शब्दों में इसका मतलब यह है कि ईश्वर सहायता देने के लिये तैयार हैं। पर ईश्वर के तैयार होने पर आप कहां तैयार हैं ? (हँसी) ईश्वर स्वस्थ्य है। आकाश में से क्या वह तुम्हें सौगात भेजे ! नहीं; ईश्वर भी ऐसा नहीं करता और यदि वह ऐसा करे भी, तो उसका उचित उपयोग नहीं होगा। क्योंकि तुम डरते हुए चल रहे हो और जब डरोगे, तब जैसे हो वैसे ही बने रहोगे और उसका कुछ भी उपयोग न कर सकोगे। अर्थात् ईश्वर की यदि कोई निश्चित जगह हो, तो उसकी सौगात को वहां फिर लौटा दो। पोस्ट से जाती हो, तो भेज दो (हँसी) राष्ट्रीय अधिकार क्या है, यह मैं ने आप को बतला दिया है। अब आज मैं आप को यह बतलाना चाहता हूँ कि सत्ता अर्थात् अधिकार हम लोगों के हाथ में आने से क्या होगा तथा राष्ट्र पर उसका क्या परिणाम होगा ?

मेरे मित्र श्री० केलकर बतला ही चुके हैं कि स्वराज्य का मतलब अँगरेजों को यहाँ से निकाल कर अपना अधिकार करना नहीं है। कुछ लोगों को अवश्य निकालना पड़ेगा। इसका यह मतलब नहीं है कि राजा को न मान कर राजसत्ता हाथ में ली जाय। इसका असल तात्पर्य है, प्रजा के अधिकारों को हाथ में लेना। इस एक राष्ट्र को गुलाम रखने में इंग्लैंण्ड का क्या कुछ लाभ है ? इस बात का यदि पूर्णतया विचार किया जाय और इस समय सारे संसार की अवस्था देखी जाय तो यह दिखाई देगा कि कभी न कभी इंग्लैंड को, उसके साम्राज्य के अवयवों को, प्रान्तों और देशों को, स्वतन्त्र करना

ही पड़ेगा। कभी न कभी यह बात अवश्य होगी और होनी चाहिये। पर हम यदि उसके लिये कुछ भी न करें, तो क्या होगा ? कुछ नहीं। हमारी स्थिति ठीक वैसी ही होगी, जैसी कि उस मनुष्य की होती है, जो सारी रात चोर की ताक में बैठा रहे और उसके आने के समय सो जाय।

१८५८ में जो एक्ट पास हुआ था, तब से आज तक कुल अधिकार छिन गये। इन ५८ वर्षों में क्या हुआ ? अधिकारी बलवान् हो गये। शक्तिशाली हुए। लोगों के अधिकार कम हो गये। वे यहां तक कम हो गये कि कुलकर्णी (पट्टेदार आदि) भी अधिकारियों को नापसन्द होने लगे। उन्हें सब नौकर चाहिये। जिनके खानदान में हम हैं, वे भी गये।

जो पुराने जमाने में बड़े बड़े सरदार, इनामदार, मनसबदार आदि थे, उन्हें सरकार ने घर बैठे पेन्शन देने का बहाना दिखलाकर उनके वे अधिकार कम कर डाले। वे (सरदार) भी सोचने लगे, चलो अच्छा हुआ। घर बैठे रुपया मिल ही जाता है। इतनी दिक्कत उठाने की क्या आवश्यकता है ? पर उस समय इन लोगों में से किसी ने यह नहीं कहा कि हम लोगों का सेना रखने तथा सरकार के लिये लड़ने का अधिकार छीना जा रहा है। इन्हीं सब बातों के समय पर न होने से हम लोगों की ऐसी स्थिति हुई है।

पचास साठ वर्षों में इन सब प्रान्तों के अधिकार युरोपियन अधिकारीवर्ग के हाथों में चले गये हैं। इससे आप यह न समझें कि मैं युरोपियन अधिकारियों को बुरा समझता हूँ। वे बहुत पढ़े-लिखे होते हैं। विलायत से जो अच्छे विद्यार्थी आते हैं, उन्हें ये जगहें दी जाती हैं। उनकी कर्तृत्वशक्ति अधिक रहती है। इतना होने पर भी हम लोगों के लिये काम करने में उन्हें बड़ी घटी उठानी पड़ती है। विलायत की आबो हवा

ठंढी और यहां की गरम है—इसलिये उन्हें बड़ी बड़ी तनख्वाहें देनी पड़ती हैं। हां, ये सब बातें हम कबूल करते हैं। मेरा केवल कहना यही है कि हमारे उस काम को करने के लिये तैयार रहते हुए और वह हमारा होते हुए उसे दूसरे क्यों करें? वे अच्छा करते हैं या निकम्मा, यह सवाल ही दूसरा है। हमारे कामों का, हमारे हितों का प्रतिबन्ध होने से हमारे चित्त शक्तिहीन हो रहे हैं और हमारे हृदयों की आशायें कम हो रही हैं। हम लोगों का पुरुषत्व नष्ट हो रहा है। इसीलिये हमें ये सब नहीं चाहिये।

अब भी यदि शंका हो, तो वर्त्तमान अवस्था से आपको इसका पता लगा लेना चाहिये कि हिन्दुस्थान यदि किसी एक राष्ट्र से संबन्ध स्थित रखने के लिये तैयार है, तो वह इङ्गलैण्ड ही के साथ। (तालियाँ) इङ्गलैण्ड की जगह जर्मनी के आने में हमारा कोई लाभ नहीं है। व्यवहारों की दृष्टि से देखिये तब भी आज १०० वर्ष से इङ्गलैण्ड यहां है और जर्मनी आवे भी तो वह नया रहेगा। उसका नया दम, नई उम्मेदें, नये हौसले, नई भूख होगी और वैसा हो कैसे सकता है? जो कुछ हो, सो ठीक ही है। राजा हमें दूसरा नहीं चाहिये। परन्तु हमारे अधिकार लुप्त हो गये हैं, जिससे हम लोगों की स्थिति यतीमों की सी हो गई है। वे अधिकार हमें चाहिये। यह बात मैं ही आप को कह रहा हूँ, सो नहीं है।

लारेन्स साहब ने भी इस बात को कहा है कि "भारत में यदि सुधार करना हो, लड़ाई के पश्चात् यदि किसी विशेष पद्धति का प्रबन्ध करना हो, तो सारे हिन्दुस्थान के भिन्न भिन्न प्रान्त कीजिये।" भाषाओं की कल्पना उन्हें मालुम न थी। हम उसे भी जोड़े देते हैं। मराठी प्रान्त, तेलगू प्रान्त, कानड़ी प्रान्त, हिन्दी आदि भिन्न भिन्न प्रान्त कीजिये। देशी भाषाओं का वाद भी इसी स्वराज्य में होता है। कोई प्रश्न ऐसा नहीं है जो

स्वराज्य पर अवलंबित न हो। यदि साधारण प्रतिबन्ध न होता, तो एक गुजराती युनिवर्सिटी हो जाती। पर वैसा करना हम लोगों के हाथ में नहीं है। देशी भाषाओं द्वारा शिक्षा देने का कौनसा ऐसा बड़ा प्रश्न है कि उसमें यह भेद उत्पन्न हो! क्या अंग्रेज अपने भाइयों को फ्रेंच भाषा के द्वारा शिक्षा देते हैं अथवा जर्मन अंगरेजी में या तुर्क फ्रेंच में? ऐसे उदाहरण सामने होते हुए उन पर हम दुःखित होकर लेख क्यों लिखें? हम लोग कहते हैं, वैसा क्यों नहीं होता? इसी लिये कि हम लोगों को अधिकार नहीं है। यह निश्चित करना तुम्हारे हाथ में नहीं है कि तुम अपने बच्चों को कैसी शिक्षा दोगे। हम लोग लड़कों को पढ़ने के लिये भेजते हैं, पर यह नहीं सोचते कि उनकी क्या गति होगी? मतलब यह कि इस समय ऐसा कोई प्रश्न नहीं है, जो स्वराज्य पर—अधिकारों पर अवलम्बित न हो।

परन्तु जैसा कि कहा गया है हिन्दुस्थान बहुत बड़ा देश है, भाषाओं पर उसको विभाजित कीजिये। चाहे गुजराती भाग अलग कीजिये, चाहे मराठी अलग कीजिये। पर उसमें हिन्दू मुसलमान कैसे शिक्षा पावें? इसी बारे में आप से कुछ कहूँगा। कनाडा में अंग्रेजों और फ्रेंचों की बस्ती है। वहाँ यदि अंग्रेज राजनीतिज्ञ इस बात को निश्चित कर सकते हैं, तो क्या वे यहां निश्चय नहीं कर सकते कि हिन्दू और मुसलमान कैसे रहें? जैसा ऊपर कहा गया है कि यदि हिन्दुस्थान के भिन्न भिन्न प्रान्त कर दिये जायं जैसे—बंगाल प्रान्त अलग और उस पर भारतीय अधिकारी न रखकर अभी कुछ दिनों के लिये युरोपियन गवर्नर रक्खा जाय, तो भी काम चल सकता है। लोकनियुक्त अध्यक्ष न मिलने तक आस्ट्रेलिया में क्या होता था? विलायत से गवर्नर जाता था। उसे कौन्सिल में जो लोकनियुक्त सदस्य बतलाते थे, वैसाही करना पड़ता था।

यहां उल्टे तुम्हें कुछ चाहता हो, तो कौंसिल में रिजोल्युशन (प्रस्ताव) उपस्थित करो, मिहनत करो, आँकड़े इकट्ठे करो पर उस के लिये छदाम भी न पाओ। बाकी के कौन्सिलर तनख्वाहें पावें। इधर तुम व्यर्थ मिहनत करो और अन्त में प्रस्ताव अस्वीकृत हो। पास हो भी जाय, तो उसे अमल में लाने के लिये सरकार पर कोई दबाव नहीं। वह बच्चों का खिलवाड़ है। जो इसे नहीं समझता, उस में उसी प्रमाण से देश के विषय में कम अभिमान है, यही समझना चाहिये। (हँसी) कुछ भी अधिकार न होने से यह पक्षियों काला 'छीटे हुए दानों को पाकर लड़ना है।' इस से यदि आगे चलकर हमें कुछ अधिकार प्राप्त होंगे, अधिकार मिलेंगे, तो हमारे लिये यह अच्छी-कीमती वस्तु है। नहीं तो वह किसी काम की नहीं है। फिलहाल वहाँ क्या होता है? अच्छे अच्छे चार सुशिक्षितों को आपस में भिड़ा देने की यह विद्या है। इसीलिये स्वराज्य से क्या होगा और माँगते क्या हैं? इस बात को ध्यान में लाइये। स्वराज्य में हम यह माँगते हैं कि सारे भारतवर्ष में इसी प्रकार के प्रान्त (states) हों और इन प्रान्तों पर पहिले विलायत से आये हुए अंग्रेज और अन्त में लोगों के द्वारा चुने हुए अध्यक्ष रहें और सारे राष्ट्र संबन्धी जो प्रश्न हैं, उनके लिये एक निराली कौंसिल हो।

युरोप, अमेरिका, युनाइटेडस्टेट में जैसी प्रणाली है, उसी के अनुसार छोटे छोटे राज्य बनकर उनको एकत्र करने के लिये जैसी वहाँ कांग्रेस है, उसी प्रकार के अधिकार, Imperial Council के अधिकार, भारत-सराकर को अपने हाथों में रखना चाहिये। इस समय जो भिन्न भिन्न ७।८ प्रान्त हैं, उनके दस नहीं बीस प्रान्त कीजिये और लोगों को जिस रीति से सहल हो, पसंद हो, जिस से उन के हाथों में

अधिकार रहें, वैसीही व्यवस्था कीजिये। यही स्वराज्य का माँगना है। इन व्यवस्थाओं के लिये शायद तुम्हें पहिले कई जगहों पर अंग्रेज अफसर लाने पड़ेंगे। ठीक है। पर वे अफसर हमारे रहेंगे, लोगों के रहेंगे, लोगों के नौकर होंगे, वे हमारे धनी बनकर न रहेंगे। इस समय हमें जो कुछ भारत में सुधार करने हैं, उनको करने के लिये केवल हम लोगों की बुद्धि काम नहीं देगी। हमें इङ्गलैण्ड से, अमेरिका से लोग लाने होंगे। पर वे हमारे सामने जवाबदेह रहेंगे—बेजवाबदेह नहीं रहेंगे। इसलिये यदि एक दृष्टि से विचार किया जाय तो यह नहीं कहा जा सकता कि यह आन्दोलन युरोपियनों के विरुद्ध है। जवाबदेह किस से? हम से या स्वयं अपने लिये? यह जवाबदेही जब तक हमारी ओर नहीं है, उनकी जवाबदेही हमारे अधिकार में नहीं है, तब तक जैसा चल रहा है, वैसा ही चलेगा! तब तक हम चाहे जिस दिशा से प्रयत्न करें, वे सब विफल होंगे। तब तक हम किसी विषय का आन्दोलन क्यों करें, उस के पैर लँगड़े पड़ जायँगे और हमारा उद्देश्य कभी सफल न होगा। जिस राष्ट्र को अपना ही हित करने की स्वतंत्रता नहीं है, जब तक उस राष्ट्र में यह शक्ति नहीं है कि वह अपने हितानुकूल प्रस्ताव पास करे, तब तक हम नहीं समझते कि दूसरे के खिलाने से उस का पेट भरेगा। अब यह बात मालूम हो गई कि जिसे अंग्रेजी में 'Despotic rule' राजतन्त्री सत्ता कहते हैं—उस सत्ता से लोगों का कल्याण नहीं होगा। कुछ लोगों के दिल में यह बात ठीक जम गई है। मेरा कहने का उद्देश्य यही है कि उसके लिये तुम प्रयत्न करो। यदि उस को समझाने में मेरे शब्द कम हों, तो उस में मेरा दोष है; उस कल्पना का कुछ भी दोष नहीं है। वह निर्दोष है। ये सब बातें, उनके भिन्न

भिन्न रूप एक ही व्याख्यान में मैं आप के सम्मुख नहीं रख सकता। यह जो मैं ने छोटे छोटे प्रान्तों या राज्यों की कल्पना बतलाई है, उस का प्रबन्ध कैसा होना चाहिये, उस में किसके कैसे अधिकार होने चाहिये, जो प्रबन्ध इंडियन कन्सॉलिडेशन ऐक्ट १८६८ में कन्सॉलिडेशन के बारे में हुआ है, उस में कौन सी शुद्धियाँ होनी चाहिये आदि अनेक प्रश्न हैं और उन पर एक नहीं, दस व्याख्यान भी मैं दूँ, तो भी पूरे नहीं हो सकते। हमारा तत्व एकही है और इसी के विषय में व्याख्यान में आप से कहना है। आप में से जो लोग विद्या, बुद्धि, धन आदि किसी तरह से भी इस बात का विचार करने के अधिकारी हैं, उन्हें यह बात स्वयं ही मालूम हो जायगी। यह बात मिलेगी या नहीं, वह बात होगी या नहीं, इस में क्या पूछना है? प्राप्त करना हमारे ही हाथों में है। मेरी समझ में तो यह प्रश्न आता ही नहीं। हम इतनी मिहनत करते हैं; किन्तु नहीं मिलता। पर उद्योग करना तो हमारे हाथ में है। मिलने न मिलने की बात हमारी नहीं है। उद्योग करो। जो कुछ तुम करोगे, उसका परिणाम अवश्य होगा। अपने हृदय में इस बात को दृढ़ कर लो। राज्यों में क्या किसी ने स्वतन्त्रता नहीं पाई है? अन्य राष्ट्रों में क्या स्वतन्त्रता देवी ऊपर से गिरी है? मैं साफ कहता हूँ कि तुम में हिम्मत नहीं होगी तो नहीं मिलेगी। हिम्मत यदि है, तो आज नहीं तो कल, १० बरस में, २० बरस में अवश्य मिलेगी। पर उस के लिये तुम्हारे उद्योग की आवश्यकता है। तुम्हारा धर्मतत्व है—कर्म्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन" गीता में क्यों कहा गया है? कथा, पुराण कह कर सेर, आध सेर चावल कमाने के लिये? श्रेष्ठ धर्म वही बतलाते हैं; पश्चिमात्य इतिहास भी वही बतलाता है। इतना होते हुए भी तुम

यह विचार क्यों करते हो कि कैसे होगा ? किस तरह होगा ? "यथा।मृत्पिंडकृता"......मिट्टी का गोला है। हम उसे विष्णु शिव आदि कहते हैं और लोग पूजा करते हैं। इतनी योग्यता उस प्रतिमा में लाते हैं। वह केवल मिट्टी का गोला रहता है, जिस में बिलकुल चलने की शक्ति नहीं; जमीन पर छोड़ने से धम से नीचे गिरता है। उस गोले को कुछ कृति से, कुछ उद्योग से और कुछ संस्कार के द्वारा हम स्वरूप दे सकते हैं। तब हमारी यह देह तो उसकी तरह निर्जीव नहीं; बल्कि सजीव है। मिट्टी के गोले को यदि हम अच्छा रूप नहीं दे सकेंगे, तो इस में हमारा दोष है। उस का अच्छा रूप हम बना सकते हैं। जल्दी करने की बात नहीं है। जल्दी में कुछ नहीं मिलेगा। निश्चय के साथ यदि हम काम करें, तो मिट्टी के गोले को भिन्न स्वरूप दे सकते हैं। यह बात शास्त्र सिद्ध है। स्वतः सिद्ध है। अनुभव सिद्ध है। प्रमाणों और इतिहास से सिद्ध है। इतने प्रमाण सामने रहते हुए भी यदि तुम्हारा समाधान न हो, तुम्हारा विश्वास न जमे, तो देश के भावी अभ्युदय के विषय में बोलना छोड़ दो। हम से माथापच्ची मत करो। ये बातें होनेवाली हैं और होनी चाहिये, ऐसा विश्वास होना चाहिये। विश्वास से ही काम होते हैं। जहाँ यह विश्वास नहीं है, वहाँ कुछ हो नहीं सकता। मेरा यह कहना भी नहीं है कि यदि कुछ दें, तो उसे भी न लो। जितना दें, उतना लो और अधिक माँगो; माँगते चले जाओ। (हँसी) मद्रास में मिसेज़ ऐनीबेसेएट ने और यहाँ मैं ने स्वराज्य संघ स्थापित किए और इसी तरह बंगाल तथा अन्य प्रान्तों में भी स्थापित हो जायँगे। शायद कांग्रेस इस प्रश्न को हाथ में ले और स्वयं लीगें स्थापित करे, जिस में अन्य सब लीगें उस में मिल कर काम करें। उद्योग एक ही करना है। क्योंकि

यह लाभ का प्रश्न है। स्वराज्य हमें चाहिये और वह कैसा होना चाहिये यह हम ऊपर बतला चुके हैं और उस के होने से आगे चल कर कैसी अवस्था होगी, सो भी बतला दिया गया है। लार्ड सभा को ये स्वप्न अभी से दिखाई दे रहे हैं। हमारे लार्ड हार्डिङ्ग ने कहा है कि "थोड़े समयही में सिवि-लियनों को अपने अधिकार लोगों के हाथों में सौंपने पड़ेंगे।" हमारे विरुद्ध पक्ष में जो लोग हैं, उन्हें अभी से ऐसे स्वप्न दिखाई दे रहे हैं। (हँसी) उन्हें यह मालूम हो गया है कि कुछ भी तो प्रबन्ध करना ही होगा। तुम्हें पहिले एक ही उद्योग करना है और वह यह है कि पहिले सारे देश में आन्दोलन कर लोगों को विश्वास कराना चाहिये कि यही हमारा उद्देश्य है। इसी के लिये हमें प्रयत्न करना है। इतना ही नहीं; विलायत में जा कर हमें वहां के लोगों को इस बात को अच्छी तरह समझा देना है और पार्लमेण्ट में जिस समय यह प्रश्न विवाद के लिये उपस्थित हो, उस समय उसके सामने अपने विचारों को अच्छी तरह फैलाना है। इसका योग्य मार्ग यही है कि इस समय जो इण्डियन ऐक्ट है, उसके सुधार के लिये पार्लमेण्ट में बिल पेश किया जाय। हमें यही माँगना है कि यह कानून दुरुस्त हो जाय। जिस समय यह कम्पनी के अधिकार महारानी के हाथों में गये, उस समय इस ऐक्ट में बहुत ही मामूली फेर-फार हुए। इस समय उसमें एक खास तरह की दुरुस्ती चाहिये और वह केवल हमारे ही लिये नहीं; बल्कि साम्राज्य के लिये चाहिये। यह काम सब लोगों की सहायता तथा अनुकूलता से होना चाहिये। Moderates और Nationalists का एक सा उद्देश्य है। अतः एक ही बात माँगकर उसी को प्राप्त करना है। इस भावना को धारण कर उद्योग करना है, उसीके लिये

होमरूल लीग अर्थात् स्वराज्य-संघ स्थापित हुआ है। कांग्रेस के सामने यह विषय रख दिया है। पर कांग्रेस साल भर में एक बार होती है। इसलिये यह मौका निकल जाने पर फिर दूसरे वर्ष की राह देखनी पड़ती है। परन्तु हमें साल भर तक उद्योग को करते रहना चाहिये और यह बात कांग्रेस को मंजूर है तथा इसी उद्देश्य से यह लीगें स्थापित की गई हैं। इसमें विशेष झंझट नहीं है—कुछ भी नहीं है। इसको कबूल कीजिये और अपनी उद्दिष्ट वस्तु को माँगिये। उसके माँगने का हमें अधिकार है। आज हम ने जो धन माँगा है, वह यही कि हर एक मनुष्य एक रुपया दे। दो रुपये Admission मेम्बर होने की फीस है। पर उसे न देना हो तो एक रुपया देना चाहिये। तीस करोड़ में एक लाख मेम्बर भी न मिलेंगे, तो हमारी समझ में भारत के विषय में बातचीत करना भी व्यर्थ है। हमारे कान व्यर्थ कष्ट पाते हैं। मैं समझता हूँ कि एक वर्ष में यह आन्दोलन सफलीभूत हो सकेगा। वार्षिक चन्दा एक रुपया रक्खा गया है। आन्दोलन के लिये एक रुपया भी न देने का स्वार्थ-त्याग करने की बुद्धि तुम में न हो, तो व्याख्यान सुनने भी न आओ, जिसमें हमें इतनी जोर से न बोलना पड़े। तुम्हें यदि कुछ करना है, तो यही; बाकी काम इस संघ के कार्यकर्ता करेंगे। इसके लिये कई जगहों पर ऐसे व्याख्यान देने होंगे, लोगों को इकट्ठा करना होगा, उनको समझाना होगा। पुलीस एक जगह बन्द करे, तो दूसरी जगह काम करना चाहिए। इसको अधूरा न छोड़ना चाहिये। यह मत समझो कि यह बड़ी आसानी से मिल जायगा। यह एक रुपया कुछ भी नहीं है। चित्त का दृढ़ निश्चय चाहिये।

कोई यदि तुम से पूछने आवे तो उसे स्पष्ट बतलाने की तुम में हिम्मत चाहिये कि "हम जो चाहते हैं, वह सर्वथैव

वैध है। हम उसके सदस्य हैं और एक रुपया हम ने दिया है। हमें यह बात चाहिये ही।" इतना कहने की हिम्मत न हो तो बात निराली है। सारे हिन्दुस्थान को, तुम को न सही– तुम्हारे वंशजों को यह बात भली मालूम होगी। तुम्हारी इच्छा भी न हो, तब भी यह बात होनेवाली है। तुम न सही, तुम्हारी अगली पीढ़ी के लोग इसके लिये प्रयत्न करेंगे। पर वे तुम्हें बेवकूफ समझेंगे। यह ताना सुनना हो, तो कोई हर्ज नहीं। मेरा विश्वास है कि वे प्रयत्न करेंगे। तुम इस बात पर ध्यान दो कि तुम्हें कौन सा प्रयत्न करना चाहिये और इसे कैसी मदद देनी चाहिये? शायद पुलीस तंग करे। हो सकता है। वह पूछे कि "क्यों मेम्बर हुए?" 'हाँ, हो गए' यही कहना चाहिये और ऐसा कानून है। मुकद्दमा छोड़ और कुछ नहीं होगा। पर वकील बिना मेहनताना लिये तुम्हारे लिये काम करेंगे। (हँसी) 'एक रुपया अमुक काम के लिये दिया' यह कहना राजद्रोह नहीं है और न इसका मेम्बर होना ही राजद्रोह है। इसके (एक रुपया दे कर मेम्बर बनने के) सिवाय तुम्हें और कुछ करना नहीं है। बाकी काम करने का भार लीग अपने ऊपर ले रही है। ऐसे समय क्या राष्ट्र के लोग चुप बैठेंगे? कोई हो, चाहे हिन्दू, चाहे मुसलमान, मारवाड़ी या गुजराती कोई हो, हमें सब चाहिये; इसमें जाति भेद अथवा धर्म-भेद नहीं है। इसमें सब लोगों को एक में मिल कर अपने देशके लिये कार्य करना है।

पहिले मैं ने बतलाया है कि हम लोगों में बहुत से ऐसे व्यापारी आदि हैं, जो अपने मुनाफे का कुछ हिस्सा धर्म-खाते में रखते हैं—जैसे गोरक्षा इत्यादि। मैं पूछता हूँ कि इसके लिये सब व्यापारी एक पैसा या आधा पैसा हमें क्यों न दें? भारतवर्ष एक बड़ी गौ है। उसने हमें जन्म दिया

है। उसके उद्योग पर, फलद्रूपता पर और उसका दूध पीकर हम अपना पालन-पोषण करते हैं। यह तो धर्म रक्षा का काम है, गो रक्षा का काम है, राष्ट्र का काम है, यह राजकीय उन्नति का काम है। यह धर्म है, उन्नति है, इन सब बातों को ध्यान में ला कर जो कुछ मदद, आप लोगों से मैं ने बतला ही दिया है—एक रुपये से अधिक नहीं—जिससे जो हो सके कम से कम एक बार इस संस्था को देकर गो-रक्षा करने के पुण्य का भागी होना चाहिये। यह बहुत बड़ा कार्य है।

ये सब बातें मैं ने आप से कहीं। ये संघ स्थापित हुए। उद्योग प्रारंभ हो गया है। उस पर आफतें आवेंगी, तो उनके सहने के लिये हम तैयार हैं और सहना पड़ेगा। क्योंकि बैठे बैठे कुछ भी काम नहीं होगा। इस रीति से प्रयत्न कीजिये, इसको यों मदद दीजिये, मेरा विश्वास है, ईश्वर आप को नहीं छोड़ेगा। उसी की कृपा से ये बातें साध्य हुई हैं। पर हमें तो प्रयत्न अवश्य ही करना चाहिये। एक बहुत पुराना सिद्धान्त है कि "God helps them who help themselves." ईश्वर अवतार कब लेते हैं? हम जब उनसे अपना दुःख बतला कर प्रार्थना करते हैं। योंही ईश्वर अवतीर्ण नहीं होते। आलसियों के लिये अवतार नहीं होता; उद्योगी, यत्नशील लोगों के लिये होता है। इस लिये काम में लग जाइये। कानूनों में किस तरह की शुद्धियाँ चाहते हैं, यह आज बतलाने का समय नहीं है। ऐसी हरएक बातों पर इतनी बड़ी सभा में चर्चा करना कठिन है। अतएव सामान्यतः मैं ने जो दो चार बातें बतलाई हैं और कल जो कुछ कहा था, इन दोनों को मिला दीजिये। उद्योग में लग जाइये कि परमेश्वर आप के प्रयत्नों को सफलीभूत करें (तालियाँ)।